॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

त्रिपादविभूतिमहानारायण उपनिषद

विषय सूची

॥अथ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्॥ 3

॥प्रथम अध्याय॥ 4

॥ द्वितीय अध्याय॥ 13

॥ तृतीय अध्याय॥ 23

॥ चतुर्थ अध्याय॥ 30

॥ पांचवां अध्याय॥ 37

॥ छठा अध्याय॥ 49

॥ सातवाँ अध्याय॥ 66

॥ आठवां अध्याय॥ 99

शान्ति पाठ 113

॥ श्री हरि ॥

॥अथ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्॥

॥ हरिः ॐ ॥

यत्रापह्नवतां याति स्वाविद्यापदविभ्रमः ।
तल्लिपान्नारायणाख्यं स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः॥

॥प्रथम अध्याय॥

अथ परमतत्त्वरहस्यं जिज्ञासुः परमेष्ठी देवमानेन सहस्रसंवत्सरं तपश्चचार । सहस्रवर्षेऽतीतेऽत्युग्रतीव्रतपसा प्रसन्नं भगवन्तं महाविष्णुं ब्रह्मा परिपृच्छति भगवन् परमतत्त्वरहस्यं मे ब्रूहीति । परमतत्त्वरहस्यवक्तात्वमेव नान्यः कश्चिदस्ति तत्कथमिति। तदेवोच्यते। त्वमेव सर्वज्ञः। त्वमेव सर्वशक्तिः । त्वमेव सर्वाधारः । त्वमेव सर्वस्वरूपः । त्वमेव सर्वेश्वरः । त्वमेव सर्वप्रवर्तकः । त्वमेव सर्वपालकः ।त्वमेव सर्वनिवर्तकः । त्वमेव सदसदात्मकः । त्वमेव सदसद्विलक्षणः । त्वमेवान्तर्बहिर्व्यापकः । त्वमेवातिसूक्ष्मतरः । त्वमेवातिमहतो महीयान् । त्वमेव सर्वमूलाविद्यानिवर्तकः । त्वमेवाविद्याविहारः । त्वमेवाविद्याधारकः । त्वमेव विद्यावेद्यः । त्वमेव विद्यास्वरूपः । त्वमेव विद्यातीतः । त्वमेव सर्वकारणहेतुः । त्वमेव सर्वकारणसमष्टिः। त्वमेव सर्वकारणव्यष्टिः । त्वमेवाखण्डानन्दः । त्वमेव परिपूर्णानन्दः । त्वमेव निरतिशयानन्दः । त्वमेव तुरीयतुरीयः । त्वमेव तुरीयातीतः । त्वमेव अनन्तोपनिषद्विमृग्यः । त्वमेवाखिलशास्त्रैर्विमृग्यः । त्वमेव ब्रह्मेशानपुरन्दरपुरोगमैरखिलामरैरखिलागमैर्विमृग्यः ।

त्वमेव सर्वमुमुक्षुभिर्विमृग्यः । त्वमेवामृतमयैर्विमृग्यः । त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयः । त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वम् । त्वमेव मोक्षस्त्वमेव मोक्षदस्त्वमेवाखिलमोक्षसाधनम् । न किञ्चिदस्ति त्वद्व्यतिरिक्तम् । त्वद्व्यतिरिक्तं यत्किंचित्प्रतीयते तत्सर्वं बाधितमिति निश्चयम् । तस्मात्त्वमेव वक्ता त्वमेवगुरुस्त्वमेव पिता त्वमेव सर्वनियन्ता त्वमेव सर्वं त्वमेव सदा ध्येय इति सुनिश्चितः ।

परमतत्त्व के रहस्य को जानने की इच्छा से श्रीब्रह्माजी ने देवताओं के वर्षों से सहस्र वर्षों तक तपस्या की। सहस्र देववर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माजी की अत्यन्त उग्र एवं तीव्र तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् महाविष्णु प्रकट हुए। ब्रह्माजी ने उनसे कहा-' भगवन्! मुझे परमतत्त्व का रहस्य बतलाइये; क्योंकि परमतत्त्व के रहस्य को बतलाने वाले एकमात्र आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं है। यह किस प्रकार? (यदि आप यह पूछे तो) वही बतलाता हूँ। आप ही सर्वज्ञ हैं। आप ही सर्वशक्तिमान् हैं। आप ही सबके आधार हैं। आप ही सब कुछ बने हुए हैं। आप ही सबके स्वामी हैं। आप ही समस्त कार्योंके प्रवर्तक हैं। आप ही सबके पालनकर्ता हैं। आप ही सबके निवर्तक (विनाशक) हैं। आप ही सत् एवं असत्स्व रूप हैं। आप ही सत् एवं असत् से विलक्षण हैं। आप ही भीतर और बाहर-सर्वत्र व्यापक हैं। आप ही अत्यन्त सूक्ष्मतर हैं। आप ही महान से भी अत्यन्त महान हैं। आप ही सबकी मूल-अविद्या के विनाशक हैं। आप ही अविद्या में विहार करने वाले भी हैं। आप ही अविद्या को धारण करने वाले अधिष्ठान हैं। आप ही विद्या (ज्ञान)-द्वारा जाने जाते हैं। आप ही विद्या स्वरूप हैं। आप ही विद्या से परे भी हैं। आप ही समस्त कारणों के

कारण हैं। आप ही समस्त कारणों की समष्टि (समुदाय) हैं। आप ही समस्त कारणों की व्यष्टि (पृथक्-पृथक् कारण) हैं। आप ही अखण्ड आनन्दरूप हैं। आप ही पूर्णानन्द हैं। आप ही निरतिशय आनन्दस्वरूप हैं। आप ही तुरीय-तुरीय (तुरीयावस्था के भी तुरीय) हैं। आप ही तुरीयातीत हैं। अनन्त उपनिषदों द्वारा आप ही अन्वेषणीय हैं। निखिल शास्त्रों के द्वारा आप ही हूँढ़नेयोग्य हैं। आप ही ब्रह्मा (मैं), शंकरजी, इन्द्र आदि सब देवताओं तथा समस्त तन्त्रशास्त्रों द्वारा अन्वेषण करनेयोग्य हैं। सभी मुमुक्षुओं द्वारा आप ही हूँढे ज़ानेयोग्य हैं। सभी अमृतमय (मुक्त) पुरुषोंद्वारा आप ही खोजने योग्य हैं। आप ही अमृतमय हैं, आप ही अमृतमय हैं, आप ही अमृतमय हैं। आप ही सर्वरूप हैं, आप ही सर्वरूप हैं, आप ही सर्वरूप हैं। आप ही मोक्षस्वरूप हैं, आप ही मोक्षदाता हैं तथा मोक्ष के सम्पूर्ण साधनस्वरूप भी आप ही हैं। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आपके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब (बुद्धिद्वारा) बाधित (अतत्त्व-मिथ्या) है-यह निश्चित है। इसलिये आप ही वक्ता हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही पिता हैं, आप ही सबके नियन्ता हैं, आप ही सर्वस्वरूप हैं और आप ही सदा ध्यान करनेयोग्य हैं-यह सुनिश्चित है' ॥१॥

परमतत्त्वज्ञस्तमुवाच महाविष्णुरतिप्रसन्नो भूत्वा साधुसाध्विति साधुप्रशंसापूर्वं सर्वं परमतत्त्वरहस्यं ते कथयामि । सावधानेन श्रुणु । ब्रह्मन् देवदर्शीत्याख्याथर्वणशाखायां परमतत्त्वरहस्याख्याथर्वणमहानारायणोपनिषदि गुरुशिष्यसंवादः

पुरातनः प्रसिद्धतया जागर्ति । पुरा तत्स्वरूपज्ञानेन महान्तः सर्वं ब्रह्मभावं गताः । यस्य श्रवणेन सर्वबन्धः प्रविनश्यन्ति । यस्य ज्ञानेन सर्वरहस्यं विदितं भवति । तत्स्वरूपं कथमिति ।

परमतत्त्वज्ञ भगवान् महाविष्णु 'साधु-साधु' कहकर प्रशंसा करते हुए (साधुवाद देते हुए) अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे बोले-'सम्पूर्ण परमतत्त्वका रहस्य तुम्हें बतलाता हूँ। सावधान होकर सुनो। ब्रह्माजी! अथर्ववेद की देवदर्शी नामक शाखा में परमतत्त्वरहस्य नामक अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद् प्राचीन काल से गुरु-शिष्य-संवाद अत्यन्त सुप्रसिद्ध होनेसे सर्वज्ञात है। पहले (अतीत कल्प में) उसके स्वरूप को जानने से सभी महत्तम पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए हैं। जिसके सुनने से सभी बन्धन समूल नष्ट हो जाते हैं, जिसके ज्ञान से सभी रहस्य ज्ञात हो जाते हैं, उसका स्वरूप कैसा है, यह बतलाते हैं- ॥ २-३॥

शान्तो दान्तोऽतिविरक्तः सुशुद्धो गुरुभक्तस्तपोनिष्ठः शिष्यो ब्रह्मनिष्ठं गुरुमासाद्य प्रदक्षिणपूर्वकं दण्डवत्प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयेनोपसंगम्य भगवन् गुरो मे परमतत्त्वरहस्यं विविच्य वक्तव्यमिति । अत्यादरपूर्वकमिति हर्षेण शिष्यं बहूकृत्य गुरुर्वदति । परमतत्त्वरहस्योपनिषत्क्रमः कथ्यते सवाधानेन श्रूयताम् । कथं ब्रह्म । कालत्रयाबाधितं ब्रह्म । सर्वकालाबाधितं ब्रह्म । सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म । आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म । सर्वं खल्विदं ब्रह्म । मायातीतं गुणातीतं ब्रह्म । अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म । अद्वितीयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वरूपव्यापकाभिन्नापरिच्छिनं ब्रह्म । सच्चिदानन्दस्वप्रकाशं ब्रह्म । मनोवाचामगोचरं ब्रह्म ।

अमितवेदान्तवेद्यं ब्रह्म । देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म । सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म तुरीयं निराकारमेकं ब्रह्म । अद्वैतमनिर्वाच्यं ब्रह्म । प्रणवात्मकं ब्रह्म । प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म । प्रणवाद्यखिलमन्त्रात्मकं ब्रह्म । पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म ।

"शान्त, अप्रमत्त, अत्यन्त विरक्त, अत्यन्त पवित्र, गुरुभक्त, तपस्वी शिष्य ने ब्रह्मनिष्ठ गुरु को प्राप्त कर, उनकी प्रदक्षिणा की, भूमि पर लेटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर, विनय पूर्वक समीप जाकर कहा-'भगवन्! गुरुदेव ! मुझे परमतत्त्व के रहस्य को खोलकर बतलाइये।' अत्यन्त आदरपूर्वक हर्ष से शिष्य की बहुत प्रशंसा करके गुरु बोले-'परमतत्त्व-रहस्योपनिषद् का क्रम बतला रहा हूँ', सावधानीसे सुनो" 'ब्रह्म कैसा है? (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों से जो अबाधित है-किसी भी काल में जिसका अभाव नहीं होता, वह ब्रह्म है। समस्त कालों से अबाधित (अनवच्छिन्न) तत्त्वं ब्रह्म है। ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों है। ब्रह्म आदि, मध्य एवं अन्त से रहित है। यह सब (दृश्यादृश्य जगत्) ब्रह्म है। ब्रह्म मायातीत है और गुणातीत है। ब्रह्म अनन्त, प्रमाणों से अज्ञेय, अखण्ड और परिपूर्ण है। अद्वितीयरूप, परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यस्वरूप, व्यापक, भेदहीन एवं अपरिच्छिन्न है। ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप एवं स्वत:प्रकाश है। ब्रह्म मन-वाणी से अतीत है। ब्रह्म सम्पूर्ण प्रमाणों से परे है। अगणित वेदान्तों (उपनिषदों) द्वारा ब्रह्म ही जानने योग्य है। देश से, काल से तथा वस्तु से ब्रह्म परिच्छेदहीन (असीमित) है। ब्रह्म सभी प्रकार परिपूर्ण है। ब्रह्म तुरीयस्वरूप, निराकार एवं अद्वितीय है। ब्रह्म द्वैत के साथ अवर्णनीय

है। ब्रह्म प्रणवस्वरूप है। ब्रह्म प्रणवात्मा रूप से कहा गया है। प्रणवप्रभृति समस्त मन्त्रों का स्वरूपभूत ब्रह्म है। ब्रह्म के चार पाद हैं' ॥४-५॥

किं तत्पादचतुष्टयं ब्रह्म भवति । अविद्यापादः
सुविद्यापादश्चानन्दपादस्तुरीयपादस्तुरीय इति ।
तुरीयपादस्तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च । कथं पादचतुष्टयस्य भेदः ।
अविद्यापदः प्रथमः पादो विद्यापादो द्वितीयः
आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीयपादस्तुरीय इति । मूलाविद्या प्रथमपादे
नान्यत्र । विद्यानन्दतुरीयांशाः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्ठन्ति ।
एवं तर्हि विद्यादीनां भेदः कथमिति । तत्तत्प्राधान्येन
तत्तद्व्यपदेशः । वस्तुतस्त्वभेद एव । तत्राधस्तनमेकं
पादमविद्याशबलं भवति । उपरितनपादत्रयं
शुद्धबोधानन्दलक्षणममृतं भवति ।
तच्चानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसात्मकं भवति ।
तत्र मध्यमपादमध्यप्रदेशेऽमिततेजःप्रवाहाकारतया
नित्यवैकुण्ठं विभाति । तच्च
निरतिशयानन्दाखण्डब्रह्मानन्दनिजमूर्त्याकारेण ज्वलति ।
अपरिच्छिन्नमण्डलानि यथा दृश्यन्ते
तद्वदखण्डानन्दामितवैष्णवदिव्यतेजोराश्यन्तर्गतविलसन्महाविष्णोः
परमं पदं विराजते । दुग्धोदधिमध्यस्थितामृतामृतकलशवद्वैष्णवं
धाम परमं संदृश्यते । सुदर्शनदिव्यतेजोऽन्तर्गतः सुदर्शनपुरुषो यथा
सूर्यमण्डलान्तर्गतः
सूर्यनारायणोऽमितापरिच्छिन्नाद्वैतपरमानन्दलक्षणतेजोराश्यन्तर्गत
आदिनारायणस्तथा संदृश्यते । स एव तुरीयं ब्रह्म
स एव तुरीयातीतः स एव विष्णुः स एव समस्तब्रह्मवाचकवाच्यः

स एव परंज्योतिः स एव मायातीतः स एव गुणातीतः स एव कालातीतः स एव अखिलकर्मातीतः स एव सत्योपाधिरहितः स एव परमेश्वरः स एव चिरन्तनः पुरुषः प्रणवाद्यखिलमन्त्रवाचकवाच्य आद्यन्तशून्य आदिदेशकालवस्तुतुरीयसंज्ञानित्यपरिपूर्णः पूर्णः सत्यसंकल्प आत्मारामः कालत्रयाबाधितनिजस्वरूपः स्वयंज्योतिः स्वयम्प्रकाशमयः स्वसमानाधिकरणशून्यः स्वसमानाधिकशून्यो न दिवारात्रिविभागो न संवत्सरादिकालविभागः स्वानन्दमयानन्ताचिन्त्यविभव आत्मान्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा तुरीयात्मेत्यादिवाचकवाच्योऽद्वैतपरमानन्दो विभुर्नित्यो निष्कलङ्को निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिदिति य एवं वेद स पुरुषस्तदीयोपासनया तस्य सायुज्यमेतीत्यसंशयमित्युपनिषत् ॥

'ब्रह्म के वे चार पाद कौन-कौन हैं?—अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीयंपाद-ये ही वे चार पाद हैं। तुरीयपाद तुरीयावस्था को भी तुरीय तथा तुरीयातीत है। इन चारों पादों में भेद क्या है? अविद्यापाद पहला पाद है, विद्यापाद दूसरा है, आनन्दपाद तीसरा है और तुरीयपाद चौथा है। मूल-अविद्या प्रथम पाद में ही है, दूसरोंमें नहीं। विद्या, आनन्द एवं तुरीय के अंश सभी पादों में व्याप्त होकर रहते हैं। यदि ऐसी बात है, तो विद्यादि पादों में भेद किस प्रकार है?-उन विद्यादि की प्रधानताके कारण उनके द्वारा नामों का निर्देश होता है। वस्तुतः तो अभेद ही है। उन चार पादों में एक नीचे का पाद ही अविद्यामिश्रित होता है। ऊपर के तीनों पाद शुद्ध ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप तथा अमृत (शाश्वत) रहते हैं। वे तीनों पाद अलौकिक परमानन्दस्वरूप अखण्ड अमित तेजोराशिके रूपमें

प्रकाशित रहते हैं और वे अनिर्वचनीय, अनिर्देश्य, अखण्ड आनन्दैकरसात्मक हैं। उनमें से मध्यम अर्थात् आनन्दपाद के मध्यप्रदेश में अमित तेज के प्रवाहरूप में नित्य वैकुण्ठ से विराजमान है और वह निरतिशय आनन्द एवं अखण्ड ब्रह्मानन्दस्वरूप अपनी मूर्ति से प्रकाशित है। जैसे अनन्त मण्डल दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार अखण्ड आनन्दमय भगवान् विष्णु को अमित दिव्य तेजो राशि के अन्तर्गत सुशोभित श्रीमहाविष्णु का श्रेष्ठ स्थान विराजमान है। भगवान् विष्णुका यह परमधाम क्षीरसमुद्र के मध्यमें स्थित अविनाशी अमृत के कलश के समान दिखायी पड़ता है। सुदर्शनचक्र के दिव्य तेज के मध्य में जैसे सुदर्शन के अभिमानी देवपुरुष रहते हैं, जैसे सूर्यमण्डल में सूर्यनारायण हैं, वैसे ही अमित, अपरिच्छिन्न, अद्वैत परमानन्दरूप तेजोराशि में आदिनारायण दिखलायी पड़ते हैं।' 'वे ही (आदिनारायण) तुरीय ब्रह्म हैं। वे ही तुरीयातीत हैं। वे ही विष्णु (व्यापक) हैं। वे ही समस्त ब्रह्मवाचक शब्दों के वाच्य हैं। वे ही परम ज्योति हैं। वे ही मायातीत हैं। वे ही गुणातीत हैं। वे ही कालातीत हैं। वे ही समस्त कर्मो से परे हैं। वे ही सत्य एवं उपाधिरहित हैं। वे ही परमेश्वर (सर्वसंचालक) हैं। वे ही पुराणपुरुष हैं। प्रणवादि समस्त मन्त्ररूप वाचकों के वाच्य, आदि-अन्तरहित, आदि देश-काल-वस्तु तथा तुरीय संज्ञावाले (इन सबके वाच्य) एवं नित्य परिपूर्ण, सब प्रकार से पूर्ण, सत्यसंकल्प, आत्माराम, तीनों कालों से अबाधित स्वरूपवाले, स्वयंज्योति, स्वयंप्रकाशमय, अपने समान वस्तु से रहित अर्थात् सर्वथा अद्वितीय, जिनके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक की तो बात ही क्या, जिनमें दिन-रात्रि के विभाग नहीं हैं, ज़िनमें संवत्सरादि काल-विभाग नहीं हैं, निजानन्दमय अनन्त-अचिन्त्य

ऐश्वर्यवाले, आत्मा के भी अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, तुरीयात्मा आदि शब्दों के वांच्य, अद्वैत परमानन्दरूप, विभु (सर्वव्यापक), नित्य, निष्कलङ्क, निर्विकल्प, निरञ्जन, संज्ञारहित, शुद्ध देवता एकमात्र नारायण ही हैं; दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार जानता है, वह पुरुष उन श्री नारायण भगवान की उपासना से उनके सायुज्य को प्राप्त करता है-यह संशयरहित बात है'॥६-११॥

॥ इति प्रथमोध्याये ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः॥

॥ द्वितीय अध्याय॥

अथेति होवाच च्छात्रो गुरुं भगवन्तम् ।
भगवन्वैकुण्ठस्य नारायणस्य च नित्यत्वमुक्त्वम् ।
स एव तुरीयमित्युक्तमेव । वैकुण्ठः साकारो नारायणः साकारश्च ।
तुरीयं तु निराकारम् । साकारः सावयवो निरवयवं निराकारम् ।
तस्मात्साकारमनित्यं नित्यं निराकारमिति श्रुतेः । यद्यत्सावयवं
तत्तदनित्यमित्यनुमानाच्चेति प्रत्यक्षेण दृष्टत्वाच्च ।
अतस्तयोरनित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति । कथमुक्तं नित्यत्वमिति ।
तुरीयमक्षरमिति श्रुतेः । तुरीयस्य नित्यत्वं प्रसिद्धम् । नित्यत्वानित्यत्वे
परस्परविरुद्धधर्मौ । तयोरेकस्मिन्ब्रह्मण्यत्यन्तविरुद्धं भवति ।
तस्माद्वैकुण्ठस्य च नारायणस्य च नित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति ।

तब प्रथमाध्याय के उपदेशको सुनकर शिष्यने अपने भगवत्स्वरूप गुरुदेव से कहा-'भगवन् ! वैकुण्ठ एवं श्रीमन्नारायण को भी आपने नित्य बतलाया है। वे ही (वैकुण्ठ एवं श्रीनारायण) तुरीय तत्त्व हैं, यह भी कहा ही है। श्रीवैकुण्ठधाम साकार है और श्रीमन्नारायण भी साकार हैं; किंतु तुरीयतत्त्व निराकार है। साकारतत्त्व अवयवयुक्त

होता है और निराकार अवयवरहित। अतः श्रुति यह कहती है कि साकार अनित्य होता है और निराकार नित्य होता है। जो-जो (पदार्थ) अवयववाले हैं, वे सब अनित्य हैं—अनुमान-प्रमाणसे यही सिद्ध होता है। तथा प्रत्यक्ष भी देखा जाता है। अतः उन दोनों (वैकुण्ठ एवं नारायण)-की अनित्यता बतलाना ही उचित है। आपने उनका नित्यत्व किस प्रकार बतलाया है? तुरीय तत्त्व अक्षर (अविनाशी) है-यह श्रुति कहती है; अतः तुरीय तत्त्व का नित्यत्व प्रसिद्ध है। नित्य एवं अनित्य-ये परस्परविरोधी धर्म हैं। इन दोनों विरोधी धर्मों का एक ही ब्रह्म में होना अत्यन्त विरोधी (असंगत) है। इसलिये श्री वैकुण्ठ धाम एवं श्रीमन्नारायण की भी अनित्यता ही बतलाना उचित है।' (शिष्य यह शङ्का करता है।)॥१॥

सत्यमेव भवतीति देशिकं परिहरति । साकारस्तु द्विविधः । सोपाधिको निरुपाधिकश्च । तत्र सोपाधिकः साकारः कथमिति । आविद्यकमखिलकार्यकरणजामविद्यापाद एव नान्यत्र । तस्मात्समस्ताविद्योपाधिः साकारः सावयव एव । सावयवत्वादवश्यमनित्यं भवत्येव । सोपाधिकसाकारो वर्णितः । तर्हि निरुपाधिक साकारः कथमिति । निरुपाधिकसाकारस्त्रिविधः । ब्रह्मविद्यासाकारश्चानन्दसाकारुभयात्मकसाकारश्चेति । ब्रह्मविद्यासाकारश्चानन्दसाकार उभयात्मकसाकारश्चेति । त्रिविधसाकारोऽपि पुनर्द्विविधो भवति । नित्यसाकारो मुक्तसाकाश्चेति । नित्यसाकारस्त्वाद्यन्तशून्यः शाश्वतः । उपासनया ये मुक्तिं गतास्तेषां साकारो मुक्तसाकारः । तस्याखण्डज्ञानेनाविर्भावो भवति । सोऽपि शाश्वतः । मुक्तसाकारस्त्वैच्छिक इति । अन्ये वदन्ति शाश्वतत्वं कथमिति ।

गुरु शङ्काका निवारण करते हुए कहते हैं- तुम जो कहते हो, वह ठीक ही है; किंतु साकार तत्त्व दो प्रकार का होता है-उपाधि सहित तथा उपाधिरहित । इनमें उपाधि सहित साकार किस प्रकार का है? अविद्यासे उत्पन्न समस्त कार्य एवं कारण अविद्यापाद में ही हैं और कहीं नहीं। इसलिये समस्त अविद्योपाधि से युक्त साकार तत्त्व अवयव युक्त ही है। अवयव युक्त होने से वह अवश्य अनित्य होंगे ही। इस प्रकार उपाधि युक्त साकार का वर्णन हो चुका।" तब उपाधिहीन साकार किस प्रकार का है? निरुपाधिक साकार तीन प्रकार का है-ब्रह्मविद्या साकार, आनन्द साकार तथा उभयात्मक-ब्रह्मविद्यानन्दात्मक साकार। यह त्रिविध साकार भी फिर दो प्रकार का होता है-नित्यसाकार और मुक्तसाकार। नित्यसाकार तो आदि अन्त हीन सनातन शाश्वत है। जो उपासना द्वारा मुक्तिपद को प्राप्त हुए हैं, उनको साकार देह-मुक्त साकार है। उस मुक्त पुरुष के आकार का आविर्भाव अखण्ड ज्ञान से होता है। अर्थात् भगवत धाम में स्थित मुक्तात्माओं का शरीर ज्ञानघन है। वह मुक्तात्माओं का साकार शरीर भी शाश्वत होता है; परंतु वह मुक्तसाकार ऐच्छिक इच्छाधीन होता है। दूसरे कहते हैं ऐसी स्थिति में उसका नित्यत्व कैसे होगा ? इस पर कहते हैं-॥२-७॥

अद्वैताखण्डपरिपूर्णनिरतिशयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यात्मकब्रह्म चैतन्यसाकारत्वात् निरुपाधिकसाकारस्य नित्यत्वं सिद्धमेव । तस्मादेव निरुपाधिकसाकारस्य निरवयवत्वात्स्वाधिकमपि दूरतो निरस्तमेव । निरवयवं ब्रह्मचैतन्यमिति सर्वोपनिषत्सु सर्वशास्त्रसिद्धान्तेषु श्रूयते । अथ च विद्यानन्दतुरीयाणामभेद एव

श्रूयते । सर्वत्र विद्यादिसाकारभेदः कथमिति । सत्यमेवोक्तमिति देशिकः परिहरति । विद्याप्राधान्येन विद्यासाकारः आनन्दप्राधान्येनानन्दसाकारः उभयप्राधान्येनोभयात्मकसाकारश्चेति। प्राधान्येनात्र भेद एव । स भेदो वस्तुतस्त्वभेद एव ।

अद्वैत, अखण्ड, परिपूर्ण, निरतिशय परमानन्दरूप, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, मुक्त, सत्यस्वरूप ब्रह्म की चैतन्यरूप साकारता होने से उपाधिहीन साकार का नित्यत्व सिद्ध ही है। इसीलिये निरुपाधिक साकार के निरवयव होने के कारण उससे कोई अधिक महान होगा, ऐसी शङ्का दूर से ही निवृत्त हो जाती है। सभी उपनिषदों में, समस्त शास्त्रसिद्धान्तों में 'ब्रह्म निरवयव चैतन्य है' यही सुना जाता है। और विद्या, आनन्द तथा तुरीय का सर्वत्र अभेद ही सुना जाता है।" तब, विद्या आदि साकार का भेद किस प्रकार है?' शिष्य की इस शङ्का का समाधान करते हुए गुरु कहते हैं' तुमने सत्य कहा है - विद्या की प्रधानता से विद्यासाकार, आनन्द की प्रधानता से आनन्दसाकार तथा (विद्या, आनन्द) दोनों की प्रधानतासे उभयात्मक साकार कहे जाते हैं। यहाँ प्रधानता को लेकर ही भेद है, वह भेद वस्तुतः अभेद ही है ॥ ८-१०॥

भगवन्नखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः साकारनिराकारौ विरुद्धधर्मौ । विरुद्धोभयात्मकत्वं कथमिति । सत्यमेवेति गुरुः परिहरति । यथा सर्वगतस्य निराकारस्य महावायोश्च तदात्मकस्य त्वक्पतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य महावायुदेवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र । यथा पृथीव्यादीनां व्यापकशरीराणां देवविशेषणां च तद्विलक्षणतदभिन्नव्यापका परिच्छिन्ना निजमूर्त्याकारदेवताः श्रूयन्ते सर्वत्र तद्वत्परब्रह्मणः सर्वात्मकस्य साकारनिराकारभेदविरोधो

नास्त्येव विविधविचित्रानन्तशक्तेः परब्रह्मणः स्वरूपज्ञानेनविरोधो न विद्यते । तदभावे सत्यनन्तविरोधो भवति ।

भगवन् ! अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप ब्रह्म के लिये साकार और निराकार-ये दो विरोधी धर्म प्रतीत होते हैं। दो विरोधी धर्म उनमें किस प्रकार रह सकते हैं?' इस शंका का निवारण करते हुए गुरु कहते हैं। यह ठीक है। जैसे सर्वव्यापी निराकार महावायु का और उसी के स्वरूपभूत त्वक्-इन्द्रिय के अधिष्ठाता रूप में प्रसिद्ध साकार महावायुदेवता का अभेद ही सभी जगह सुना जाता है, जैसे पृथिवी आदि व्यापक शरीर वाले देव विशेषों के उनके उस व्यापक रूप से विलक्षण किंतु उस (व्यापकरूप)-से अभिन्न, तथा अपरिच्छिन्न होते हुए भी अपनी मूर्ति के आकार के देवता सर्वत्र सुने जाते हैं-अर्थात् जैसे पृथिवी आदि के अधिष्ठाता देवता अपने पृथिवीरूपी भौतिक शरीर एवं देवशरीर दोनों से युक्त हैं, वैसे ही सर्वात्मक परब्रह्म में साकार एवं निराकार का भेद होनेपर भी विरोध नहीं है। विविध प्रकार की अनन्त विचित्र शक्तियों से सम्पन्न परब्रह्मके स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर विरोध नहीं रह जाता अर्थात् जब जान लिया जाता है कि परब्रह्म में विविध प्रकार की अनन्त विचित्र शक्तियाँ हैं, तब विरोधी धर्मों का विरोध असङ्गत नहीं लगता। इस ज्ञान के अभाव में ही अनन्त विरोध प्रतीत होते हैं ॥ ११-१२ ॥

अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परमतत्त्वपरमविभवानुसन्धानं स्वीयत्वेन श्रूयते सर्वत्र । सर्वपरिपूर्णस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम् । अन्यथा सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवल

निराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्यगगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत । तस्मात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ ।

और जब श्रीराम-श्रीकृष्णादि अवतार स्वरूपों में अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म के परमतत्त्व एवं परमैश्वर्य की स्मृति सर्वत्र स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान सुनी जाती है, तब अद्वैत परमानन्दस्वरूप, सब प्रकार से परिपूर्ण परब्रह्म के विषय में क्या कहा जाय। अन्यथा यदि सर्वपरिपूर्ण परब्रह्म का साकाररहित केवल निराकार स्वरूप ही वास्तव में अभिप्रेत हो, तब तो केवल निराकार आकाश के समान परब्रह्म में भी जडता आ जायगी। इसलिये परमार्थतः परब्रह्म के साकार एवं निराकार दोनों रूप स्वभावतः सिद्ध हैं ॥ १३ ॥

तथाविधस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणस्यादिनारायणस्योन्मेषनिमेषाभ्यां मूलाविद्योदयस्थितिलया जायन्ते ।
कदाचिदात्मारामस्याखिलपरिपूर्णस्यादिनारायणस्य स्वेच्छानुसारेणोन्मेषो भवति । अव्यक्तान्मूलाविर्भावो मूलाविद्याविर्भावश्च । तस्मादेव सच्छब्दवाच्यं ब्रह्माविद्या शबलं भवति। ततो महत् । महतोऽहङ्कारः । अहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि । पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि। पञ्चमहाभूतेभ्यो ब्रह्मैकपादव्याप्तमेकमविद्याण्डं जायते ।

इस प्रकार के अद्वैत परमानन्दस्वरूप आदिनारायण के पलक उठाने और गिराने से मूल-अविद्या की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हुआ करते हैं। आत्माराम, अखिल परिपूर्ण आदिनारायण की अपनी इच्छा

से जब कभी उनका उन्मेष होता है (पलक उठते हैं), तब उस (उन्मेष)-से परब्रह्मके निचले पाद में, जो सब (अभिव्यक्तियों)-का कारण है, मूलकारणरूप अव्यक्त (प्रकृति)-का आविर्भाव होता है। अव्यक्त से मूल (संस्कार)-का एवं मूल-अविद्या का आविर्भाव होता है। उसी (अव्यक्त)-से 'सत्' शब्द से वाच्य अविद्या मिश्रित ब्रह्म (जीव) व्यक्त होता है। उस (अव्यक्त-प्रकृति)-से महत्तत्त्व, महत् से अहंकार, अहंकार से (शब्दादि) पाँचों तन्मात्राएँ, पाँचों तन्मात्राओं से (आकाशादि) पञ्चमहाभूत और पाँचों महाभूतों से ब्रह्म के एक पाद से व्याप्त एक अविद्यात्मक अण्ड उत्पन्न होता है ॥ १४॥

तत्र तत्त्वतो गुणातीतशुद्धसत्त्वमयो लीलागृहीतनिरतिशयानन्दलक्षणो मायोपाधिको नारायण आसीत् । स एव नित्यपरिपूर्णः पादविभूतिवैकुण्ठनारायणः । स चानन्तकोटिब्रह्माण्डानामुदयस्थितिलयाद्यखिलकार्यकारणजाल-परमकारणकारणभूतो महामायातीतस्तुरीयः परमेश्वरो जयति । तस्मात्स्थूलविराट्स्वरूपो जायते ।ससर्वकारणमूलं विराट्स्वरूपो भवति । स चानन्तशीर्षा पुरुष अनन्ताक्षिपाणिपादो भवति । अनन्तश्रवणः सर्वमावृत्य तिष्ठति । सर्वव्यापको भवति । सगुणनिर्गुणस्वरूपो भवति । ज्ञानबलैश्वर्यशक्तितेजःस्वरूपो भवति। विविधविचित्रानन्तजगदाकारो भवति । निरतिशयनिरङ्कुशसर्वज्ञसर्वशक्तिसर्वनियन्तृत्वाद्यनन्तकल्याणगु णाकारो भवति । वाचामगोचरानन्तदिव्यतेजोराश्याकारोभवति । समस्ताविद्याण्डव्यापको भवति । स चानन्तमहामायाविलासानामधिष्ठानविशेष-निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मविलासविग्रहो भवति ।

उस (अविद्याण्ड)-में तत्त्वतः गुणातीत, शुद्ध सत्त्वमय तथा लीला (क्रीड़ा)-के लिये निरतिशय आनन्दरूप धारण किये मायोपाधियुक्त नारायण होते हैं। तात्पर्य यह कि अविद्याण्ड गुणातीत शुद्ध सत्त्वमय नारायण का ही लीला के लिये धारण किया हुआ निरतिशय आनन्दरूप मायोपाधिक स्वरूप ही है। ये वही नित्य परिपूर्ण पादविभूतिस्वरूप वैकुण्ठवासी नारायण हैं। वे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि समस्त कार्य एवं कारणसमूहों के (प्रकृतिरूप) परम कारण के भी कारणरूप महामायातीत तुरीयस्वरूप परमेश्वर विराजित हैं। उनसे स्थूल विराट्स्वरूप उत्पन्न होता है। वही विरास्वरूप समस्त कारणोंका मूल है। वह (विराट्) अनन्त मस्तकों तथा अनन्त नेत्रों, हाथों और पैरों से युक्त पुरुष है। वह अनन्त कानोंवाला सबको घेरकर (व्याप्त करके) स्थित है। वह सर्वव्यापक है। वह सगुण एवं निर्गुणस्वरूप है। वह ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा तेजःस्वरूप है। नाना प्रकारके अनन्त विचित्र जगत्के आकार में वही स्थित है। वही निरतिशय आनन्दमय अनन्त परमविभूति के समुदाय से सम्पन्न विश्वरूप परमात्मा है। वह निरतिशय निरङ्कुशता (परमस्वतन्त्रता) सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता सर्वनियन्तृत्व आदि अनन्त कल्याणकारी गुणों का आकर है। वह अवर्णनीय अनन्त दिव्य तेजोराशि के रूप में स्थित है। वह अविद्या के पूरे अण्ड में व्यापक है। वह महामाया के अनन्त विलासों का अधिष्ठान विशेष एवं निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म का विलास विग्रह है’ ॥ १५ ॥

अस्यैकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि स्थावराणि च
जायन्ते। तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैकनारायणावतारो जायते ।
नारायणाद्धिरण्यगर्भोजायते । नारायणादण्डविराट्स्वरूपो जायते ।
नारायणादखिललोकस्रष्टृप्रजापतयो जायन्ते ।
नारायणादेकादशरुद्राश्च जायन्ते । नारायणादखिललोकाश्च जायन्ते ।
नारायणादिन्द्रो जायते । नारायणात्सर्वेदेवाश्च जायन्ते
।नारायणाद्द्वादशादित्याः सर्वे वसवः सर्वे ऋषयः
सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते ।
नारायणात्प्रवर्तन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते । अथ नित्योऽक्षरः
परमः स्वराट् । ब्रह्मा नारायणः । शिवश्च नारायणः ।
शक्रश्च नारायणः । दिशश्च नारायणः । विदिशश्च
नारायणः । कालश्च नारायणः । कर्माखिलं च नारायणः ।
मूर्तामूर्तं च नारायणः । कारणात्मकं सर्वं कार्यात्मकं
सकलं नारायणः । तदुभयविलक्षणो नारायणः । परंज्योतिः
स्वप्रकाशमयो ब्रह्मानन्दमयो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनो
निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ।
न स समानाधिक इत्यसंशयं परमार्थतो य एवं वेद ।
सकलबन्धांश्छित्त्वा मृत्युं तीर्त्वा स मुक्तो भवति स मुक्तो
भवति । य एवं विदित्वा सदा तमुपास्ते पुरुषः स नारायणो
भवति स नारायणो भवतीत्युपनिषत् ॥

'इस (विराट्-पुरुष)-के एक-एक रोमकूप-छिद्र में अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड और (उनके) स्थावर भी उत्पन्न होते हैं। उन सब अण्डों में से प्रत्येक में नारायण का एक एक अवतार होता है। उन्हीं नारायण से हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। नारायण से ही उस अण्डका विराट्स्वरूप उत्पन्न होता है, नारायण से ही सब लोकों के स्रष्टा

प्रजापति उत्पन्न होते हैं। नारायण से ही एकादश रुद्र भी उत्पन्न होते हैं। नारायण से ही अखिल लोक उत्पन्न होते हैं। नारायण से इन्द्र उत्पन्न होते हैं। नारायण से समस्त देवता उत्पन्न होते हैं। नारायण से बारह आदित्य उत्पन्न होते हैं। सब (आठों) वसुनामक देवता, सभी ऋषि, सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त छन्द नारायणसे ही उत्पन्न होते हैं। नारायण से ही प्रवृत्त होते (क्रियाशील बनते) हैं। नारायण में ही सब लीन हो जाते । हैं। अतः यह ही नित्य, अविनाशी, सर्वश्रेष्ठ एवं स्वयंप्रकाश हैं। नारायण ही ब्रह्मा हैं। नारायण ही शिव हैं। नारायण ही इन्द्र हैं। नारायण ही दिशाएँ हैं। नारायण ही विदिशारूप (कोण) हैं। नारायण ही काल हैं। नारायण ही समस्त कर्म हैं। नारायण ही मूर्त एवं अमूर्तरूप हैं। नारायण ही समस्त कारणरूप तथा सम्पूर्ण कार्यस्वरूप हैं। इन दोनों कारण तथा कार्य से विलक्षण भी नारायण ही हैं। परमज्योति, स्वयंप्रकाशमय, ब्रह्मानन्दमय, नित्य, निर्विकल्प, निरञ्जन, अवर्णनीय, शुद्ध एकमात्र देवता नारायण ही हैं; दूसरा कोई नहीं है। न वह किसी के समान हैं और न किसी से अधिक हैं, उनके सिवा कोई दूसरा है ही नहीं। संशयरहित होकर परमार्थतः जो इस प्रकार जानता है, वह सम्पूर्ण बन्धनोंको छेदन करके, मृत्युको पार करके मुक्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है। जो इस प्रकार जानकर सर्वदा उन (श्रीनारायण)-की उपासना करता है, वह पुरुष नारायणस्वरूप हो जाता है, वह नारायणस्वरूप हो जाता है ॥ १६॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीय अध्याय॥

अथ छात्रस्तथेतिहोवाच । भगवन्देशिक परमतत्त्वज्ञ
सविलासमहामूलाऽविद्योदयक्रमः कथितः ।
तदु प्रपञ्चोत्पत्तिक्रमः कीदृशो भवति । विशेषेण
कथनीयः । तस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि ।

शिष्यने 'ठीक है' कहकर फिर पूछा-'भगवन् ! परमतत्त्वज्ञ गुरुदेव! आपने विलास के सहित महामूलअविद्या के उदयक्रम का वर्णन किया। उस (मूलाविद्या) से प्रपञ्च की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है, इसे विशेषतः वर्णन करें। मैं उसका तत्त्व जानना चाहता हूँ ॥१॥

तथेत्युक्त्वा गुरुरित्युवाच ।यथानादिसर्वप्रपञ्चो दृश्यते ।
नित्योऽनित्यो वेति संशय्येते । प्रपञ्चोऽपि द्विविधः ।
विद्याप्रपञ्चश्चाविद्याप्रपञ्चश्चेति । विद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वं सिद्धमेव
नित्यानन्दचिद्विलासात्मकत्वात् । अथ च
शुद्धबुद्धमुक्तसत्यानन्दस्वरूपत्वाच्च ।

अविद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वमनित्यत्वं वा कथमिति । प्रवाहतो नित्यत्वं वदन्ति केचन । प्रलयादिकं श्रूयमाणत्वादनित्यत्वं वदन्त्यन्ये । उभयं न भवति । पुनः कथमिति । संकोचविकासात्मकमहामायाविलासात्मक एव सर्वोऽप्यविद्याप्रपञ्चः । परमार्थतो न किंचिदस्ति क्षणशून्यानादिमूलाऽविद्याविलासत्वात् । तत्कथमिति । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । नेह नानास्ति किंचन । तस्माद्ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधितमेव । सत्यमेव परम्ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

'ऐसा ही हो' यह कहकर गुरु बोले-'यह अनादि प्रपञ्च जैसा दिखायी पड़ता है, वह नित्य है या अनित्य इस प्रकार का संशय उत्पन्न होता है। प्रपञ्च भी दो प्रकार का है-विद्या-प्रपञ्च और अविद्या-प्रपञ्च । विद्याप्रपञ्च की नित्यता तो इसी से सिद्ध है कि वह नित्यानन्दमय चैतन्य का विलास तथा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य एवं आनन्दस्वरूप हैं। अविद्या-प्रपञ्च नित्य है या अनित्य ? कुछ लोग प्रवाहरूप से उसकी नित्यता बतलाते हैं। शास्त्रों में प्रलयादि का वर्णन सुना जाता है, इस कारण से दूसरे उसकी अनित्यता बतलाते हैं। वस्तुतः दोनों ही बातें नहीं हैं। फिर है किस प्रकार ? समस्त अविद्याप्रपञ्च महामाया को संकोच एवं विकासरूप विलास ही है। क्षण-क्षण में शून्य होनेवाला अनादि मूल अविद्या का विलास होने के कारण परमार्थतः कुछ भी नहीं है अर्थात् समस्त अविद्या-प्रपञ्च प्रतिक्षण विलीन होनेवाला है, अतः उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। वह किस प्रकार ? एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यहाँ अनेक नामकी वस्तु कुछ भी नहीं है, ऐसी श्रुति है। अतएव ब्रह्म से भिन्न सब बाधित अर्थात प्रतीतिमात्र, सत्ताहीन

ही है। सत्य ही परम ब्रह्म है। ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं अन्तहीन है ॥ २॥

ततः सविलासमूलाऽविद्योपसंहारक्रमः कथमिति ।
अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण देशिक उपदिशति ।
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवा भवति ।
तावता कालेन पुनस्तस्य रात्रिर्भवति । द्वे अहोरात्रे एकं
दिनं भवति । तस्मिन्नेकस्मिन्दिने आसत्यलोकान्तमुदयस्थितिलया
जायन्ते । पञ्चदशदिनानि पक्षो भवति । पक्षद्वयं मासो
भवति । मासद्वयमृतुर्भवति । ऋतुत्रयमयनं भवति ।
अयनद्वयं वत्सरो भवति । वत्सरशतं ब्रह्मानेन
ब्रह्मणः परमायुःप्रमाणम् ।तावत्कालस्तस्य स्थितिरुच्यते ।
स्थित्यन्तेऽण्डविराट्पुरुषः स्वांशं हिरण्यगर्भमभ्येति ।
हिरण्यगर्भस्य कारणं परमात्मानमण्डपरिपालकनारायणमभ्येति ।
पुनर्वत्सरशतं तस्य प्रलयो भवति । तदा जीवाः सर्वे
प्रकृतौ प्रलीयन्ते । प्रलयं सर्वशून्यं भवति ।

तब विलास (अभिव्यक्ति)-संहित मूल-अविद्या के उपसंहार का क्रम किस प्रकार है?' (इस प्रकार शिष्य के पूछने पर) अत्यन्त आदरपूर्वक बड़ी प्रसन्नता से गुरु उपदेश करते हैं-'सहस्र चतुर्युगों का ब्रह्माजी का एक दिवस होता है। इतने ही समय की फिर उनकी रात्रि होती है। रात्रि और दिवस दोनों का सम्मिलित रूप एक दिन होता है। उस एक दिन में सत्यलोक तक के समस्त लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हो जाते हैं। (ऐसे) पंद्रह दिनों का (ब्रह्माजीका) पक्ष (पखवाड़ा) होता है। दो पक्षों का महीना होता है। दो महीनों का ऋतु होता है।

तीन ऋतुओंका अयन होता है। दो अयनों का वर्ष होता है। ब्रह्मा के वर्षों के प्रमाण से सौ वर्ष की ब्रह्माजी की परमायु (पूर्ण आयु) होती है। इतने समय तक उन (ब्रह्माजी)-की स्थिति कही जाती है। स्थिति के अन्त में अण्डगत विराट्पुरुष अपने अंशी हिरण्यगर्भ को प्राप्त होते उनमें लीन हो जाते हैं। हिरण्यगर्भ के कारण परमात्मा अण्डपरिपालक नारायण को वे हिरण्यगर्भ प्राप्त होते हैं। फिर सौ वर्षों तक उनकी प्रलय होती है। उस समय सब जीव प्रकृति में लीन हो जाते हैं। प्रलय के समय सब शून्य हो जाता है’॥३-४॥

तस्य ब्रह्मणः स्थितिप्रलयावादिनारायणस्यांशेनावतीर्ण-
स्याण्डपरिपालकस्य महाविष्णोरहोरात्रिसंज्ञकौ ।
ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमास-
संवत्सरादिभेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य
स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते स्वांशं महाविराट्पुरुषमभ्येति ।
ततः सावरणं ब्रह्माण्डं विनाशमेति । ब्रह्माण्डावरणं
विनश्यति तद्धि विष्णोः स्वरूपम् । तस्य तावत्प्रलयो भवति ।
प्रलये सर्वशून्यं भवति ।

‘उन ब्रह्माजी की स्थिति एवं प्रलय आदि-नारायण के अंश से अवतीर्ण इन अण्ड-परिपालक महाविष्णु के दिवस एवं रात्रि कहे जाते हैं। इन दिवस एवं रात्रि का अर्थात् ब्रह्मा के सौ वर्षों के जीवन एवं सौ वर्षों की प्रलय का महाविष्णु का एक दिन होता है। इसी प्रमाण से दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेदसे उनके सौ करोड़ वर्षों तक उनकी स्थिति कही जाती है। स्थिति के अन्त में वह अपने कारण महाविराट्

पुरुष को प्राप्त होते अर्थात उनमें लीन हो जाते हैं। तब आवरण के साथ ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जाता है। ब्रह्माण्ड का आवरण विनष्ट होता है, वही आवरण विष्णु का स्वरूप है। उन श्रीमहा विष्णु की उतनी ही (एक अरब वर्ष की) प्रलय होती है। प्रलय के समय सब शून्य हो जाता है' ॥५॥

अण्डपरिपालकमहाविष्णोः
स्थितिप्रलयावादिविराट्पुरुषस्याहोरात्रिसंज्ञकौ ते अहोरात्रे
एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिभेदाच्च
तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते
आदिविराट्पुरुषः स्वांशमायोपाधिकनारायणमभ्येति ।
तस्य विराट्पुरुषस्य यावत्स्थितिकालस्तावत्प्रलयो भवति । प्रलये
सर्वशून्यं भवति ।

'अण्डपरिपालक महाविष्णु की स्थिति एवं प्रलय (उनके दो अरब वर्ष) आदिविराट् पुरुष के दिवस-रात्रि कहे जाते हैं। उन दिवस-रात्रि का एक दिन होता है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेदसे उनके कालमान के सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त उनकी स्थिति कही जाती है। स्थिति के अन्त में आदिविराट् पुरुष अपने अंशी मायोपाधिक नारायण को प्राप्त होता है अर्थात् उनमें लीन हो जाता है। उस विराट्पुरुष का जितना स्थिति काल है, उतना ही प्रलयकाल भी होता है। प्रलय के समय सब शून्य हो जाता है' ॥ ६॥

विराट्स्थितिप्रलयौ
मूलाविद्याण्डपरिपालकस्यादिनारायणस्याहोरात्रिसंज्ञकौ ।

ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिभेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते त्रिपाद्विभूतिनारायण स्येच्छावशान्निमेषो जायते । तस्मान्मूलाविद्याण्डस्य सावरणस्य विलयो भवति । ततः सविलासमूलविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या लक्षणशून्याविर्भावतिरोभावात्मिकानाद्यखिलकारण-कारणानन्तमहामायाविशेषणविशेषिता परमसूक्ष्ममूलकारणमव्यक्तं विशति । अव्यक्तं विशेद्ब्रह्मणि निरिन्धनो वैश्वानरो यथा । तस्मान्मायोपाधिक आदिनारायणस्तथा स्वस्वरूपं भजति । सर्वे जीवाश्च स्वस्वरूपं भजन्ते । यथा जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तस्फटिक-प्रतीतिस्तदभावे शुद्धस्फटिकप्रतीतिः । ब्रह्मणोपि मायोपाधिवशात्सगुणपरिच्छिन्नादिप्रतीतिरुपाधि-विलयान्निर्गुणनिरवयवादिप्रतीतिरित्युपनिषत् ॥

विराट की स्थिति एवं प्रलय मूल-अविद्याण्ड परिपालक आदि-नारायण के दिवस-रात्रि कहे जाते हैं। उन दिवस-रात्रि का एक दिन होता है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेद से उनके कालमान के सौ करोड़ वर्षों के समय तक उनकी स्थिति कही जाती है। स्थिति के अन्त में त्रिपाद्विभूतिनारायण की इच्छा से उनका निमेष होता है (उनकी पलकें गिरती हैं)। इस निमेषसे मूल-अविद्याण्डका उसके आवरणके साथ प्रलय हो जाता है। तब मूल-अविद्या, जो सत्-असत् से विलक्षण, अनिर्वचनीय, लक्षणरहित, आविर्भाव-तिरोभावरूप, अनादि अखिल कारणों की कारणरूप एवं अनन्त महामाया विशेषणों से युक्त है, अपने विलास के साथ तथा सम्पूर्ण कार्यरूप उपाधि के सहित परमसूक्ष्म मूल कारण-अव्यक्त में प्रवेश

कर जाती है। अव्यक्त फिर ब्रह्म में प्रवेश कर जाता है; उस समय ईंधन के जल जाने पर जैसे अग्नि अपने वास्तविक स्वरूप को, प्राप्त कर लेता है, वैसे ही मायोपाधिक आदिनारायण, मायारूप उपाधि के नष्ट हो जाने पर अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। समस्त जीव अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे जपा (जवा)-पुष्प के सान्निध्य (समीपता) से स्फटिक में ललाई की प्रतीति होती है और उस पुष्प के अभाव में शुद्ध स्फटिक प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म में भी मायारूप उपाधि से ही सगुणत्व, परिच्छिन्नत्व आदिकी प्रतीति होती है। उपाधि का नाश हो जानेपर निर्गुणत्व, निरवयवत्व आदि की प्रतीति होती है ॥ ७॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ चतुर्थ अध्याय॥

ॐ ततस्तस्मान्निर्विशेषमतिनिर्मलं भवति ।
अविद्यापादमतिशुद्धं भवति । शुद्धबोधानन्द-
लक्षणकैवल्यं भवति । ब्रह्मणः पादचतुष्टयं
निर्विशेषं भवति । अखण्डलक्षणाखण्डपरिपूर्ण-
सच्चिदानन्दस्वप्रकाशं भवति । अद्वितीयमनीश्वरं
भवति । अखिलकार्यकारणस्वरूपमखण्डचिद्घनानन्द-
स्वरूपमतिदिव्यमङ्गलाकारं निरतिशयानन्दतेजोराशि-
विशेषं सर्वपरिपूर्णानन्तचिन्मयस्तग्भाकारं
शुद्धबोधानन्दविशेषाकारमनन्तचिद्विलासविभूति-
समष्ट्याकारमद्भुतानन्दाश्चर्यविभूतिविशेषाकारमनन्त-
परिपूर्णानन्ददिव्यसौदामिनीनिचयाकारम् ।
एवमाकारमद्वितीयाखण्डानन्दब्रह्मस्वरूपं निरूपितम् ।

ॐ। उपाधि का नाश हो जाने के कारण ब्रह्म का निर्विशेष रूप अत्यन्त निर्मल होता है। वह अविद्या से परे, अतः अत्यन्त शुद्ध है। शुद्ध बोधानन्दमय कैवल्यस्वरूप है। ब्रह्म के चारों पाद निर्विशेष हैं।

वह अखण्डस्वरूप, सर्वतः परिपूर्ण, स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्द है। अद्वितीय तथा ईश्वररहित है-अर्थात् उसका कोई स्वामी, नियन्ता नहीं है। वह ब्रह्म समस्त कार्यकारणस्वरूप, अखण्ड चिङ्घनानन्दरूप, अतिदिव्य मङ्गलाकार, निरतिशय आनन्दरूप तेजोराशिविशेष, सर्वपरिपूर्ण, अनन्त चिद्विलासमय विभूति का समष्टिरूप, अद्‌भुत आनन्दमय आश्चर्य पूर्ण विभूति विशेष स्वरूप, अनन्त चिन्मय स्तम्भाकार, शुद्ध ज्ञानानन्द विशेष स्वरूप, अनन्त परिपूर्णानन्दमय दिव्य विद्‌युन्माला स्वरूप है। इस प्रकार ब्रह्म का अद्वितीय अखण्डानन्दमय स्वरूप वर्णित हुआ ॥ १ ॥

अथ छात्रो वदति । भगवन्पादभेदादिकं कथं कथमद्वैतस्वरूपमिति निरूपितम् । देशिकः परिहरति ।

फिर शिष्य कहता है- भगवन् ! ब्रह्म के पाद भेदादि कैसे सम्भव हैं और यदि हैं तो वह अद्वैतस्वरूप है यह किस प्रकार कहा गया?' ॥२॥

विरोधो न विद्यते ब्रह्माद्वितीयमेव सत्यम् ।
तथैवोक्तं च । ब्रह्मभेदो न कथितो ब्रह्मव्यतिरिक्तं
न किंचिदस्ति । पादभेदादिकथनं तु ब्रह्मस्वरूपकथनमेव ।
तदेवोच्यते । पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म तत्रैकमविद्यापादम् ।
पादत्रयममृतं भवति । शाखान्तरोपनिषत्स्वरूपमेव निरूपितम् ।
तमसस्तु परं ज्योतिः परमानन्दलक्षणम् । पादत्रयात्मकं ब्रह्म
कैवल्यं शाश्वतं परमिति । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं
तमसः परस्तात् । तमेवंविद्वानमृतैह भवति । नान्यः पन्था

विद्यतेऽयनाय । सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं परंज्योतिस्तमस उपरि विभाति । यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् । तदेवर्तं तदु सत्यमाहुस्तदेव सत्यं तदेव ब्रह्म परमं विशुद्धं कथ्यते । तमश्शब्देनाविद्या ।

गुरु शंका का समाधान करते हैं-'इसमें विरोध नहीं है। ब्रह्म अद्वैत है, यही सत्य है और यही कहा गया है। ब्रह्म में भेद नहीं बताया गया है; क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। पादभेदादि का वर्णन तो ब्रह्म के स्वरूप का ही वर्णन है। वही कहा जा रहा है। ब्रह्म चार पादवाला (चतुःपादात्मक) है। इन (चारों पादों)-में एक अविद्यापाद है और तीन पाद अमृत (नित्य) हैं। दूसरी शाखाओं के उपनिषदों में वर्णित स्वरूप का ही यहाँ वर्णन किया गया है। शाखान्तरीय उपनिषदोंमें इस प्रकारके वचन मिलते हैं- त्रिपाद स्वरूप ब्रह्म अविद्या रूप अन्धकार से परे, ज्योतिर्मय, परमानन्द स्वरूप एवं सनातन परम कैवल्यरूप है। मैं इस आदित्य के समान प्रकाशमय, तमस् के परे स्थित महान् पुरुष को जानता हूँ। उसको इस प्रकार तमस् से परे तेजोमय रूप में जाननेवाला यहाँ संसार में अमृतस्वरूप अर्थात मुक्त हो जाता है। मोक्षप्राप्ति के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सम्पूर्ण ज्योतियों की ज्योति तमस् से परे कही गयी है। सबकी आधारभूत, अचिन्त्यस्वरूप, आदित्यवर्ण, प्रकाशस्वरूप परम ज्योति तमस् से ऊपर (परे) प्रकाशित है। जो एक, अव्यक्त, अनन्तस्वरूप, विश्वरूप पुरातन तत्त्व तमस से परे अवस्थित है, वही ऋत (समस्त काम्य कर्मो का फल-स्वर्गादि) है। उसी को सत्य (निष्काम भाव का

प्राप्य) कहा गया है। वही सत्य (नित्यसत्ता) है। वही परम विशुद्ध ब्रह्म है। (इन मन्त्रों में) तमस-शब्द के द्वारा अविद्या कही जाती है' ॥ ३-८॥

पादोऽस्य विश्वा भूतानि । त्रिपादस्यामृतं दिवि । त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः । पादोऽस्येहाभवत्पुनः । ततो विश्वङ् व्यक्रामत् । साशनाऽनशने अभि । विद्यानन्दतुरीयाख्यपादत्रयममृतं भवति । अवशिष्टमविद्याश्रयमिति ।

'समस्त भूत इन ब्रह्म-को एक पाद (भाग) हैं। इनके शेष तीन पाद अमृतस्वरूप (नित्य) हैं, जो परम व्योम में प्रतिष्ठित हैं। तीन पादों वाला पुरुष सबसे ऊपर प्रकाशित है और इसको अवशिष्ट एक पाद सम्पूर्ण जीवों के रूप में इस जगत में प्रकट हुआ। इसके बाद वह जड़-चेतनात्मक विश्व में चारों ओर व्याप्त हो गया। विद्या, आनन्द एवं तुरीय नामक तीन पाद शाश्वत हैं। शेष चौथा पाद अविद्याके आश्रित है॥९-१० ॥

आत्मारामस्यानादिनारायणस्य कीदृशावुन्मेषनिमेषौ तयोः स्वरूपं कथमिति ।

(शिष्य पूछता है-) आत्माराम श्रीआदिनारायण के उन्मेष-निमेष (नेत्रोन्मीलन-निमीलन) कैसे होते हैं? उनका स्वरूप क्या है?'॥ ११ ॥

गुरुर्वदति । पराग्दृष्टिरुन्मेषः ।
प्रत्यग्दृष्टिर्निमेषः । प्रत्यग्दृष्ट्या स्वस्वरूपचिन्तनमेव

निमेषः । पराग्दृष्ट्या स्वस्वरूपचिन्तनमेवोन्मेषः ।
यावदुन्मेषकालस्तावन्निमेषकालो भवति । अविद्यायाः
स्थितिरुन्मेषकाले निमेषकाले तस्याः प्रलयो भवति । यथा
उन्मेषो जायते तथा चिरन्तनातिसूक्ष्मवासनाबलात्पुनरविद्याया
उदयो भवति । यथापूर्वमविद्याकार्याणि जायन्ते ।
कार्यकारणोपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेदोऽपि दृश्यते ।
कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः । ईश्वरस्य महामाया
तदाज्ञावशवर्तिनी । तत्संकल्पानुसारिणी विविधानन्तमहामाया-
शक्तिसंसवेतिनानन्तमहामाया जालजननमन्दिरा महाविष्णोः
क्रीडाशरीररूपिणी ब्रह्मादीनामगोचरा । एतां महामायां तरन्त्येव ये
विष्णुमेव भजन्ति नान्ये तरन्ति कदाचन । विविधोपयैरपि
अविद्याकार्याण्यन्तःकरणान्यतीत्य कालाननु तानि जायन्ते ।
ब्रह्मचैतन्यं तेषु प्रतिबिम्बितं भवति । प्रतिबिम्बा एव जीवा इति
कथ्यन्ते । अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति ।
महाभूतोत्थसूक्ष्माङ्गोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति ।
बुद्धिप्रतिबिम्बितचैतन्यं जीवा इत्यपरे मन्यन्ते ।
एतेषामुपाधीनामत्यन्तभेदो न विद्यते । सर्वपरिपूर्णो
नारायणस्त्वनया निजया क्रीडति स्वेच्छया सदा ।
तद्वदविद्यमानफल्गुविषयसुखाशयाः सर्वे जीवाः
प्रभावन्त्यसारसंसारचक्रे । एवमनादिपरम्परा
वर्ततेऽनादिसंसारविपरीतभ्रमादित्युपनिषत् ॥

गुरु बतलाते हैं-'बाह्य-दृष्टि उन्मेष (पलक खोलना) है और आन्तरिक-दृष्टि निमेष (पलक बंद करना) है। अन्तर्दृष्टि से अपने स्वरूप का चिन्तन करना ही निमेष (पलक बंद करना) है। बाह्य-दृष्टि से अपने स्वरूप का चिन्तन करना ही उन्मेष (पलक खोलना) है। जितने परिमाण को उन्मेषकाल होता है, उतने ही परिमाण का

निमेषकाल भी होता है। उन्मेषकाल में अविद्या की स्थिति होती है। निमेषकाल में उस अविद्या को लय होता है। जैस उन्मेष होता है, वैसे ही चिरंतन अत्यन्त सूक्ष्म वासना के प्रभाव से फिर अविद्या का उदय हो जाता है। पहले की भाँति ही अविद्या के कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। फिर कार्य तथा कारणरूप उपाधि के भेद से जीव एवं ईश्वर का भेद भी दिखायी देने लगता है। यह जीव कार्यरूप उपाधि से युक्त है और ईश्वर कारणरूप उपाधि से युक्त हैं। ईश्वर की महामाया उन्हीं की आज्ञा के अधीन रहती हैं। वह महा माया उन ईश्वर के संकल्प के अनुसार कार्य करनेवाली, विविध प्रकार की अनन्त महामायाशक्तियों से भली प्रकार सेवित, अनन्त महामायाजाल की उत्पत्ति का स्थान, महाविष्णु की लीलाशरीर रूपिणी तथा ब्रह्मादि के लिये भी अगोचर हैं। जो भगवान् विष्णु का ही भजन करते हैं, वे इन महामाया को अवश्य पार कर जाते हैं। दूसरे लोग जो भगवान् विष्णु का भजन नहीं करते अनेक उपायों का अवलम्बन करके भी कभी नहीं तरते। अविद्याके कार्यरूप अन्त:करणों का आश्रय लेकर वे अनन्तकाल तक जन्मते रहते हैं; क्योंकि उन अन्त:करणों में ब्रह्मचैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिबिम्ब ही जीव कहलाते हैं। सभी जीव अन्त:करण की उपाधि से युक्त हैं, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। समस्त जीव महाभूतों से उत्पन्न सूक्ष्म शरीर रूप उपाधि से युक्त हैं, इस प्रकार दूसरे लोग कहते हैं। बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य ही जीव है, ऐसा दूसरों का मत है। इन सब (जीवों) में उपाधि को लेकर ही भेद है, अत्यन्त भेद नहीं है। सर्वतः परिपूर्ण श्रीनारायण तो अपनी इस इच्छाशक्ति से सदा लीला किया करते हैं। इसी प्रकार सब जीव अज्ञानवश उन तुच्छ विषयों में, जिनमें सुख नहीं है, सुखप्राप्ति की

आशा से असार संसार चक्र में दौड़ते रहते हैं। इस प्रकार अनादि संसार-वासना रूप विपरीत-भ्रम के कारण ही जीवों की संसार-चक्र में घूमने की अनादि-परम्परा चलती रहती है'॥ १२-१४॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ पंचमोऽध्यायः ॥

॥ पांचवां अध्याय॥

अथ शिष्यो वदति गुरुं भगवन्तं नमस्कृत्य
भगवन् सर्वात्मना नष्टाया अविद्यायाः
पुनरुदयः कथम् ।

संसारसे तरने का उपाय और मोक्षमार्ग का निरूपण श्रीगुरुभगवान को नमस्कार करके फिर शिष्य पूछता है-भगवन्! सम्पूर्णत: नष्ट हुई अविद्या का फिर उदय कैसे होता है?' ॥ १॥

सत्यमेवेति गुरुरिति होवाच ।
प्रावृट्कालप्रारम्भे यथा मण्डूकादीनां
प्रादुर्भावस्तद्वत्सर्वात्मना नष्टाया अविद्याया
उन्मेषकाले पुनरुदयो भवति ।

यह सत्य है, ऐसा कहकर गुरु बोले- वर्षा ऋतुके प्रारम्भ में जैसे मेढ़क आदि का फिर से प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार पूर्णत: नष्ट हुई अविद्याका उन्मेषकाल में (भगवान के पलक खोलने पर) फिर उदय हो जाता है ॥ २ ॥

भगवन् कथं जीवानामनादिसंसारभ्रमः । तन्निवृत्तिर्वा कथमिति ।
कथं मोक्षमार्गस्वरूपं च । मोक्षसाधनं कथमिति ।
को वा मोक्षोपायः । कीदृशं मोक्षस्वरूपम् ।
का वा सायुज्यमुक्तिः । एतत्सर्वं तत्त्वतः कथनीयमिति ।

शिष्य ने फिर पूछा- 'भगवन्! जीवों का अनादि संसाररूप भ्रम किस प्रकार है? और उसकी निवृत्ति कैसे होती है? मोक्ष के मार्ग का स्वरूप कैसा है? मोक्ष का साधन कैसा है? अथवा मोक्ष का उपाय क्या है? मोक्ष का स्वरूप कैसा है? सायुज्य-मुक्ति क्या है? यह सब तत्त्वतः वर्णन करें ॥३॥

अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण शिष्यं बहूकृत्य गुरुर्वदति श्रूयतां
सावधानेन। कुत्सितानन्तजन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्ट-
विविधविचित्रानन्तदुष्कर्मवासनाजालविशेषैर्देहात्मविवेको
न जायते । तस्मादेव दृढतरदेहात्मभ्रमो भवति ।
अहमज्ञः किंचिज्ज्ञोऽहमहं जीवोऽहमत्यन्तदुःखाकारो।
अहमनादिसंसारीति भ्रमवासनाबलात्संसार एव
प्रवृत्तिस्तन्निवृत्त्युपायः कदापि न विद्यते ।
मिथ्याभूतान्स्वप्नतुल्यान्विषयभोगाननुभूय
विविधानसंख्यानतिदुर्लभान्मनोरथाननवरतमाशास्यमानः

अतृप्तः सदा परिधावति । विविधविचित्रस्थूलसूक्ष्मोत्कृष्ट-
निकृष्टानन्तदेहान्परिगृह्य तत्तदेहविहितविविधविचित्राऽनेक-
शुभाशुभप्रारब्धकर्माण्यनुभूय तत्तत्कर्मफल-
वासनाजालवासितान्तःकरणानां पुनःपुनस्तत्तत्कर्मफल-
विषयप्रवृत्तिरेव जायते । संसारनिवृत्तिमार्गप्रवृत्तिः
कदापि न जायते । तस्मादनिष्टमेवेष्टमिव भाति ।
इष्टमेवाऽनिष्टमिव भात्यनादिसंसारविपरीतभ्रमात् ।
तस्मात्सर्वेषां जीवानामिष्टविषये बुद्धिः
सुखबुद्धिर्दुःखबुद्धिश्च भवति । परमार्थतस्त्वबाधित-
ब्रह्मसुखविषये प्रवृत्तिरेव न जायते । तत्स्वरूपज्ञानाभावात् ।
तत्किमिति न विद्यते । कथं बन्धः कथं मोक्ष इति विचाराभावाच्च ।
तत्कथमिति । अज्ञानप्राबल्यात् । कस्मादज्ञानप्राबल्यमिति ।
भक्तिज्ञानवैराग्यवासनाभावाच्च । तदभावः कथमिति ।
अत्यन्तान्तःकरणमलिनविशेषात् ।

अत्यन्त आदरपूर्वक, बड़े हर्ष से शिष्य की बहुत प्रशंसा करके गुरु कहते हैं- सावधान होकर सुनो ! निन्दनीय, अनन्त जन्मों में बार-बार किये हुए अत्यन्त पुष्ट अनेक प्रकार के विचित्र अनन्त दुष्कर्मो के वासनासमूहों के कारण (जीव)-को शरीर एवं आत्मा के पृथक्त्वका ज्ञान नहीं होता। इसी से 'देह ही आत्मा है' ऐसा अत्यन्त दृढ़ भ्रम हुआ रहता है। मैं अज्ञानी हूँ, मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं जीव हूँ, मैं अनन्त दुःखों का निवास हूँ, मैं अनादि काल से जन्ममरण रूप संसार में पड़ा हुआ हूँ, इस प्रकार के भ्रम की वासना के कारण संसार में ही प्रवृत्ति (चेष्टा) होती है। इस (प्रवृत्ति)-की निवृत्ति का उपाय कदापि नहीं होता। मिथ्यास्वरूप, स्वप्न के समान विषयभोगों का अनुभव करके, अनेक प्रकार के असंख्य अत्यन्त दुर्लभ मनोरथों की निरन्तर आशा करता

हुआ अतृप्त (जीव) सदा दौड़ा करता है। अनेक प्रकार के विचित्र स्थूल-सूक्ष्म, उत्तम अधम अनन्त शरीरों को धारण करके उन-उन शरीरों में विहित (प्राप्त होनेयोग्य) विविध विचित्र, अनेक शुभ अशुभ प्रारब्ध कर्मों का भोग करके, उन-उन कर्मो के फल की वासना से वासित (लिप्त) अन्त:करणवालों की बार-बार उन-उन कर्मो के फलरूप विषयों में ही प्रवृत्ति होती है। संसार की निवृत्ति के मार्ग में प्रवृत्ति (रुचि) भी नहीं उत्पन्न होती। इसलिये (उनको) अनिष्ट ही इष्ट (मङ्गलकारी) की भाँति जान पड़ता है। संसार-वासनारूप विपरीत भ्रम से इष्ट (मङ्गलस्वरूप मोक्षमार्ग) अनिष्ट (अमङ्गलकारी) की भाँति जान पड़ता है। इसलिये सभी जीवों की इष्टविषय में सुखबुद्धि है तथा उसके न मिलने में दु:खबुद्धि है। वास्तव में अबाधित ब्रह्मसुख के लिये तो प्रवृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि उसके स्वरूप का ज्ञान जीवों को है नहीं। वह (ब्रह्मसुख) क्या है, यह जीव नहीं जानते; क्योंकि बन्धन कैसे होता है और मोक्ष कैसे होता है, इस विचार का ही (उनमें) अभाव है। जीवों की अवस्था इस प्रकार क्यों है? अज्ञान की प्रबलता से। अज्ञान की प्रबलता किस कारण से है?–भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी वासना न होनेसे। इस प्रकारकी वासनाको अभाव क्यों है?–अन्त:करणकी अत्यन्त मलिनता के कारण ॥ ४॥

अतः संसारतरणोपायः कथमिति । देशिकस्तमेव कथयति ।
सकलवेदशास्त्रसिद्धान्तरहस्य-
जन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाकवशात्सन्द्रिः
सङ्गो जायते । तस्माद्विधिनिषेधविवेको भवति । ततः
सदाचारप्रवृत्तिर्जायते । सदाचारादखिलदुरितक्षयो
भवति । तस्मादन्तःकरणमतिविमलं भवति ।

'अतः ऐसी दशा में संसार से पार होने का उपाय क्या है?' गुरु यही बतलाते हैं-'अनेक जन्मों के किये हुए अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्यों के फलोदय से सम्पूर्ण वेद-शास्त्र के सिद्धान्तों का रहस्यरूप सत्पुरुषों का संग प्राप्त होता है। उस (सत्संग)-से विधि तथा निषेध का ज्ञान होता है। तब सदाचार में प्रवृत्ति होती है। सदाचार से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। पापनाश से अन्त:करण अत्यन्त निर्मल हो जाता है'॥५-६॥

ततः सद्गुरुकटाक्षमन्तःकरणमाकाङ्क्षति ।
तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेण सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति ।
सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति । श्रेयोविघ्नाः सर्वे प्रलयं यान्ति ।
सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेवायान्ति । यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते
तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते ।
तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेणाचिरादेव
तत्त्वज्ञानं भवति ।

तब निर्मल होने पर अन्त:करण सद्गुरु का कटाक्ष (दयादृष्टि) चाहता है। सद्गुरु के कृपा-कटाक्ष के लेश से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। सब बन्धन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। श्रेय के सभी विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। सभी कल्याणकारी गुण स्वतः आ जाते हैं। जैसे जन्मान्ध को रूप का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार गुरु के उपदेश बिना करोड़ों कल्पों में भी तत्त्वज्ञान नहीं होता। इसलिये सद्गुरु के कृपा-कटाक्ष के लेश से अविलम्ब ही तत्त्वज्ञान हो जाता है'॥७॥

यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथाश्रवणध्यानादौ श्रद्धा जायते । तस्माद्धृदयस्थितानादिदुर्वासनाग्रन्थिविनाशो भवति । ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनश्यन्ति । तस्माद्धृदयपुण्डरीककर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति । ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते । ततो वैराग्यमुदेति । वैराग्याद्बुद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति । अभ्यासात्तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति ।

जब सद्गुरु का कृपा-कटाक्ष होता है, तब भगवान की कथा सुनने एवं ध्यानादि करने में श्रद्धा उत्पन्न होती है। उस ध्यानादि से हृदय में स्थित दुर्वासना की अनादि ग्रन्थि का विनाश हो जाता है। तब हृदय में स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं। इससे हृदय-कमल की कर्णिका में परमात्मा आविर्भूत होते हैं। 'इससे भगवान् विष्णु में अत्यन्त दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। तब विषयों के प्रति वैराग्य उदय होता है। वैराग्य से बुद्धि में विज्ञान (तत्त्वज्ञान) का प्राकट्य होता है। अभ्यास के द्वारा वह ज्ञान क्रमशः परिपक्व होता है ॥ ८-९॥

पक्वविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति । ततः शुभाशुभकर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति । ततो दृढतरशुद्धसात्त्विक-वासनया भक्त्यतिशयो भवति । भक्त्यतिशयेन नारायणः सर्वमयः सर्वावस्थासु विभाति । सर्वाणि जगन्ति नारायणमयानि प्रविभान्ति । नारायणव्यतिरिक्तं न किंचिदस्ति । इत्येतद्बुद्ध्वा विहरत्युपासकः सर्वत्र ।

परिपक्व विज्ञान से (पुरुष) जीवन्मुक्त हो जाता है। सभी शुभ एवं अशुभ कर्म वासनाओं के साथ नष्ट हो जाते हैं। तब अत्यन्त दृढ़ शुद्ध सात्त्विक वासना द्वारा अतिशय भक्ति होती है। अतिशय भक्ति से सर्वमय नारायण सभी अवस्थाओं में प्रकाशित होते हैं। समस्त संसार नारायणमय प्रतीत होता है। नारायण से भिन्न कुछ नहीं है, इस बुद्धि से उपासक सर्वत्र विहार करता है' ॥ १० ॥

निरन्तरसमाधिपरम्पराभिर्जगदीश्वराकाराः सर्वत्र सर्वावस्थासु प्रविभान्ति । अस्य महापुरुषस्य क्वचित्क्वचिदीश्वरसाक्षात्कारो भवति।

इस प्रकार निरन्तर भाव समाधि की परम्परा से सभी जगह, सभी अवस्थाओं में जगदीश्वर का रूप ही प्रतीत होता है। ऐसे महापुरुष को कभी-कभी ईश्वर-साक्षात्कार भी होता है' ॥ ११ ॥

अस्य देहत्यागेच्छा यदा भवति तदा वैकुण्ठपार्षदाः सर्वे समायान्ति । ततो भगवद्ध्यानपूर्वकं हृदयकमले व्यवस्थितमात्मानं संचित्य सम्यगुपचारैरभ्यर्च्य हंसमन्त्रमुच्चरन्सर्वाणि द्वाराणि संयम्य सम्यङ्नो निरुध्य चोर्ध्वगेन वायुना सह प्रणवेन प्रणवानुसन्धानपूर्वकं शनैः शनैराब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गत्य सोऽहमिति मन्त्रेण द्वादशान्तस्थितज्ञानात्मानमेकीकृत्य पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुनः सोऽहमिति मन्त्रेण षोडशान्तस्थितज्ञानात्मानमेकीकृत्य सम्यगुपचारैरभ्यर्च्य प्राकृतपूर्वदेहं परित्यज्य पुनःकल्पितमन्त्रमयशुद्धब्रह्मतेजोमयनिरतिशयानन्दमय-महाविष्णूसारूप्यविग्रहं परिगृह्य सूर्यमण्डलान्तर्गतानन्त-दिव्यचरणारविन्दाङ्गुष्ठनिर्गतनिरतिशयानन्दमयापरनदी-

प्रवाहमाकृष्य भावनयात्र स्नात्वा वस्त्राभरणाद्युपचारैरात्मपूजां
विधाय साक्षान्नारायणो भूत्वा ततो गुरुनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडं
ध्यात्वा ध्यानेनाविर्भूतमहाप्रणवगरुडं पञ्चोपचारैराराध्य गुर्वनुज्ञया
प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः
समस्तासाधारणचिह्नचिह्नितो महाविष्णोः
समस्तासाधारणदिव्यभूषणैर्भूषितः सुदर्शनपुरुषं पुरस्कृत्य
विष्वक्सेनपरिपालितो वैकुण्ठपार्षदैः परिवेष्टितो नभोमार्गमाविश्य
पार्श्वद्वयस्थितानेकपुण्यलोकानतिक्रम्य तत्रत्यैः पुण्यपुरुषैरभिपूजितः
सत्यलोकमाविश्य ब्रह्माणमभ्यर्च्य ब्रह्मणा च सत्यलोकवासिभिः
सर्वैरभिपूजितः शैवमीशानकैवल्यमासाद्य शिवं ध्यात्वा
शिवमभ्यर्च्य शिवगणैः सर्वैः शिवेन चाभिपूजितो
महर्षिमण्डलान्यतिक्रम्य सूर्यसोममण्डले भित्त्वा कीलकनारायणं
ध्यात्वा ध्रुवमण्डलस्य दर्शनं कृत्वा भगवन्तं ध्रुवमभिपूज्य ततः
शिंशुमारचक्रं विभिद्य शिंशुमारप्रजापतिमभ्यर्च्य
चक्रमध्यगतं सर्वाधारं सनातनं महाविष्णुमाराध्य तेन पूजितस्तत
उपर्युपरि गत्वा परमानन्दं प्राप्य प्रकाशते ।

इस महापुरुष को जब शरीर छोड़ने की इच्छा होती है, तब भगवान् विष्णु के सभी पार्षद उसके पास आते हैं। तब भगवान का ध्यान करता हुआ हृदय-कमल में स्थित आत्मतत्त्व का अपने अन्तरात्मा के रूप में चिन्तन करके भली प्रकार, मानसिक उपचारों से उनकी अर्चा करता है। फिर हंस-मन्त्र 'सोऽहम्' का उच्चारण करता हुआ, सभी इन्द्रिय द्वारों का संयम करके, मन का भली प्रकार निरोध करता है और प्रणव के उच्चारण से प्रणव के अर्थ का अनुसंधान (विचार) करता हुआ ऊपरकी ओर गमन करनेवाले वायु (प्राण)-के साथ धीरे-धीरे ब्रह्मरन्ध्र से बाहर चला जाता है। वहाँ 'सोऽहम्' इस मन्त्र से बारह

-दस इन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि के अन्त में उनके आधाररूप से स्थित परमात्मा चेतन-तत्त्व को एकत्र करके अर्थात् इन्द्रियों, मन एवं बुद्धि से चेतना आकर्षित करके पञ्चोपचार- जल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से मानसिक रूप में उस चेतन तत्त्व का पूजन करता है। फिर 'सोऽहम्' इस मन्त्र से षोडश तत्त्वों में स्थित ज्ञानात्मा को एकत्र करके भली प्रकार उपचारों से उसकी पूजा करता है। इस प्रकार पहले के प्राकृत शरीर का त्याग करके फिर कल्पनामय, मन्त्रमय, शुद्ध ब्रह्म-तेजोमय, निरतिशय आनन्दमय महाविष्णु के स्वरूप के समान स्वरूपवाले शरीर को धारण करता है और सूर्यमण्डल में स्थित भगवान अनन्त के दिव्य चरणारविन्द के अङ्गुष्ठ से निकले हुए निरतिशय आनन्दमय देवनदी गङ्गाजी के प्रवाह का आकर्षण करके भावना के द्वारा इस देवगंगा-प्रवाह में स्नान करता है। तत्पश्चात् वस्त्र-आभरणादि सामग्रियों से अपनी पूजा-अलंकृति करके, साक्षात् नारायण स्वरूप होकर फिर गुरु को नमस्कार करके प्रणव स्वरूप गरुड का ध्यान करता है और ध्यान के द्वारा प्रकट महाप्रणवरूप गरुड की पञ्चोपचार से अर्चा करता है। इसके बाद वह गुरु की आज्ञा से प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके प्रणवरूप गरुड पर सवार होता है और महाविष्णु के समस्त असाधारण चिह्नों से चिह्नित होकर तथा उन्हीं के समस्त असाधारण दिव्य आभूषणों से भूषित होकर, सुदर्शन-पुरुष पुरुष विग्रहधारी सुदर्शनचक्र को आगे करके, विष्वक्सेन से रक्षित, भगवान के पार्षदों से घिरा हुआ आकाशमार्ग में प्रवेश करता है। मार्ग के दोनों पार्थो में स्थित अनेक पुण्यलोकों को पार करके, वहाँ रहनेवाले पुण्य-पुरुषों से पूजित होकर, सत्यलोक में प्रवेश करके ब्रह्माजी की पूजा करता है और ब्रह्मा तथा सत्यलोक के

सभी वासियों द्वारा भली प्रकार पूजित होकर, भगवान् शङ्कर के ईशान कैवल्य (दिव्य कैलास)-में जा पहुँचता है। वहाँ भगवान् शङ्कर का ध्यान करके, शिवजी की पूजा करके, सभी शिवगणों एवं शङ्करजी द्वारा भी पूजित होकर ग्रहमण्डल तथा सप्तर्षिमण्डल को पार करके सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल का भेदन करता है और कीलक नारायण का ध्यान करके, ध्रुवमण्डल का दर्शन करके, भगवान् ध्रुव की पूजा करता है। फिर शिंशुमार-चक्र का भेदन करके, शिंशुमार प्रजापति की भली प्रकार अर्चा करता है और शिंशुमार चक्र के मध्य में स्थित सर्वाधार सनातन महाविष्णु की आराधना करके, उनके द्वारा पूजित होकर तब ऊपर जाकर परमानन्द को प्राप्त होता है' ॥ १२ ॥

ततो वैकुण्ठवासिनः सर्वे समायान्ति तान्सर्वान्सुसम्पूज्य तैः
सर्वैरभिपूजितश्चोपर्युपरि गत्वा विरजानदीं प्राप्य तत्र स्नात्वा
भगवद्ध्यानपूर्वकं पुनर्निमज्ज्य तत्रापञ्चीकृतभूतोत्थं
सूक्ष्माङ्गभोगसाधनं सूक्ष्मशरीरमुत्सृज्य केवलमन्त्रमयदिव्यतेजोमय-
निरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसारूप्यविग्रहं परिगृह्य तत
उन्मज्यात्मपूजां विधाय प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं
ब्रह्ममयवैकुण्ठमाविश्य तत्रत्यान्विशेषेण सम्पूज्य तन्मध्ये च
ब्रह्मानन्दमयानन्तप्राकारप्रासादतोरणविमानोपवनावलिभिर्ज्वलच्छि
खरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवद्यनिरतिशयनिरवधिक
ब्रह्मानन्दाचलो विराजते ।

‘तब सभी वैकुण्ठ निवासी उसके पास आते हैं। उन सबकी पूजा करके, उन सबसे पूजित होकर तथा और ऊपर जाकर विरजा नदी को प्राप्त करता है। वहाँ स्नान करके भगवान का ध्यान करते हुए फिर उसमें डुबकी लगाकर, वहाँ अपञ्चीकृत अर्थात मूलरूप, अमिश्रित पञ्च महाभूतों से बने सूक्ष्म अङ्गवाले भोग के साधनरूप सूक्ष्मशरीर को छोड़ देता है तथा मन्त्रमय, दिव्य तेजोमय, निरतिशय आनन्दमय महाविष्णु के स्वरूप के समान शरीर धारण करके, फिर जल से बाहर निकल आता है। वहाँ अपनी पूजा करके, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करते हुए ब्रह्ममय वैकुण्ठ में प्रवेश करके, वहाँ के निवासियों की भली प्रकार पूजा करके देखता है कि उस दिव्यधाम के मध्य में ब्रह्मानन्दमय अनन्त परकोटे, भवन, फाटक, विमान एवं उपवन-समूहों से तथा देदीप्यमान शिखरों से उपलक्षित निरुपम, नित्य, निर्दोष, निरतिशय, असीम ब्रह्मानन्द नामक पर्वत सुशोभित है ॥ १३॥

तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः ।
तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दलक्षणं विभाति ।
तदन्तराले चिन्मयवेदिका आनन्दवेदिकानन्दवनविभूषिता ।
तदभ्यन्तरे अमिततेजोराशिस्तदुपरिज्वलति । परममङ्गलासनं
विराजते । तत्पद्मकर्णिकायां शुद्धशेषभोगासनं विराजते । तस्योपरि
समासीनमानन्दपरिपालकमादिनारायणं ध्यात्वा तमीश्वरं
विविधोपचारैराराध्य प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय
तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पञ्चवैकुण्ठानतीत्याण्डविराट्कैवल्यं प्राप्य
तं समाराधोपासकः परमानन्दं प्रापेत्युपनिषत् ॥

'उस पर्वत के ऊपर निरतिशयानन्दमय दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित है। उस तेजोराशि के मध्य में शुद्ध ज्ञानमय आनन्दस्वरूप प्रकाशित है। उसके मध्य में चिन्मय वेदी है। वह वेदी आनन्दमय एवं आनन्दवनसे भूषित है। उसके मध्य में उसके ऊपर अमित तेजोराशि प्रज्वलित है। उस तेजोराशि में परममङ्गलमय आसन सुशोभित है। उस भद्रासन पद्म की कर्णिकापर शुद्ध शेषभगवान्को भोगासन सुशोभित है। उसके ऊपर भली प्रकार विराजमान आनन्दपरिपालक आदि-नारायणका ध्यान करके, उन सर्वेश्वर का विविध उपचारों से पूजन करता है। फिर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके, उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाकर पाँचों वैकुण्ठों को पार करता है तथा अण्डविराट के कैवल्य पद को प्राप्त करके, उनकी आराधना करके उपासक परमानन्द प्राप्त करता है'॥ १४॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ पांचवां अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ षष्ठोध्यायः ॥

॥ छठा अध्याय॥

यत उपासकः परमानन्दं प्राप सावरणं ब्रह्माण्डं च भित्त्वा परितः समवलोक्य ब्रह्माण्डस्वरूपं निरीक्ष्य परमार्थतस्तत्स्वरूपं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य समस्तवेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे समस्ताः परमर्षयश्चाण्डाभ्यन्तरप्रपञ्चैकदेशमेव वर्णयन्ति । अण्डस्वरूपं न जानन्ति । ब्रह्माण्डाद्बहिः प्रपञ्चज्ञानं न जानत्येव । कुतोऽण्डान्तरान्तरर्बहिः प्रपञ्चज्ञानं दूरतो मोक्षप्रपञ्चज्ञानमविद्या

'तब परमानन्द की प्राप्ति होने पर उपासक आवरण सहित ब्रह्माण्ड का भेदन करके, चारों ओर देखकर ब्रह्माण्ड के स्वरूप का निरीक्षण करता है तथा परमार्थतः उसके स्वरूप को ब्रह्मज्ञान के द्वारा जानकर समझ जाता है कि समस्त वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण, समस्त विद्यासमूह, ब्रह्मादि सब देवता और सभी परमर्षि भी ब्रह्माण्ड के भीतर स्थित प्रपञ्च के एक देश, एक अंग का ही वर्णन करते हैं। वह सभी ब्रह्माण्ड के स्वरूप को नहीं जानते। ब्रह्माण्ड से बाहर स्थित

प्रपंच के रहस्यको तो जानते ही नहीं। फिर ब्रह्माण्ड के भीतर एवं बाहर के प्रपंच ज्ञान से दूर मोक्षप्रपञ्च (स्वरूप)-ज्ञान तथा अविद्या-प्रपंच ज्ञान को तो जान ही कैसे सकते हैं॥१॥

चेति कथं ब्रह्माण्डस्वरूपमिति ।

ब्रह्माण्डका स्वरूप कैसा है?'॥ २॥

कुक्कुटाण्डाकारं महदादिसमष्ट्याकारणमण्डं तपनीयमयं
तप्तजाम्बूनदप्रभमुद्यत्कोटिदिवाकराभं चतुर्विधसृष्ट्युपलक्षितं
महाभूतैः पञ्चभिरावृतं महदहङ्कृतितमोभिश्च
मूलप्रकृत्या परिवेष्टितम् ।

वह मुर्गे के अण्डे के समान आकार का महत्तत्त्वादि समष्टिमय ब्रह्माण्ड तेजोमय, तपे हुए स्वर्ण के समान प्रभावाला, उदय होते हुए करोड़ों सूर्यों के समान कान्तिवाला, चारों प्रकार की उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज सृष्टि से उपलक्षित पाँचों-पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप महाभूतों से ढका हुआ, तथा महत्तत्त्व, अहंकार, तम और मूलप्रकृति से घिरा हुआ है ॥३॥

अण्डभीतिविशालं सपादकोटियोजनप्रमाणम् । एकैकावरणं तथैव ।

अण्ड की भित्ति सवा करोड़ योजन विशाल है। प्रत्येक आवरण उसी प्रमाण का अर्थात उतना ही विशाल है' ॥४॥

अण्डप्रमाणं परितोऽयुतद्वयकोटियोजनप्रमाणं महामण्डूकाद्यनन्तशक्तिभिरधिष्ठितं नारायणक्रीडाकन्तुकं परमाणुवद्विष्णुलोकसुसंलग्नमदृष्टश्रुतविविधविचित्रानन्तविशेषैरुपलक्षितम् ।

चारों ओर से ब्रह्माण्ड का प्रमाण दो खरब योजन है। महामण्डूक आदि अनन्त शक्तियों से वह अधिष्ठित (धारण किया हुआ) है। श्रीनारायण के खेलने की गेंद के समान वह है। परमाणु के समान विष्णुलोक से चिपका है। किसी के द्वारा न देखी, न सुनी अनेक प्रकार की अनन्त विचित्रताओं की विशेषता से युक्त है ॥५॥

अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति ।

इस ब्रह्माण्डके चारों ओर ऐसे ही दूसरे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणोंके साथ प्रकाशित होते हुए अवस्थित हैं' ॥६॥

चतुर्मुखपञ्चमुखषण्मुखसप्तमुखअष्टमुखादिसंख्याक्रमेण सहस्रावधिमुखान्तैर्नारायणांशै रजोगुणप्रधानैरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः सत्त्वतमोगुणप्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकर्तृभिरधिष्ठितानि महाजलौघमत्स्यबुद्बुदानन्तसङ्घवद्भ्रमन्ति ।

वह ब्रह्माण्ड चार मुखों के, पाँच मुखों के, छः मुखोंवाले, सात मुखोंके, आठ मुखोंके-इस प्रकार संख्याक्रमसे सहस्र मुखोंतकके,

श्रीनारायणके अंशरूप, रजोगुणप्रधान एक-एक सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा)-द्वारा अधिष्ठित हैं। विष्णु, महेश्वर नामवाले, श्रीनारायण के अंशरूप, सत्त्व तथा तमोगुणप्रधान एक-एक स्थिति तथा संहारकर्ता से भी अधिष्ठित हैं। वह सभी ब्रह्माण्ड विशाल जलप्रवाह में मत्स्य तथा बुलबुलों के अनन्त समूहों की भाँति घूमते रहते हैं' ॥७॥

क्रीडासक्तजालककरतलामलकवृन्दवन्महाविष्णोः करतले विलसन्त्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि ।

क्रीड़ा में लगे बालक की हथेली में आँवलों के समूह की भाँति महाविष्णु की हथेली में अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं ॥ ८॥

जलयन्त्रस्थघटमालिकाजालवन्महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्त कोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति ।

जलयन्त्र (रहट) में लगे घड़ों की माला के समूहकी भाँति महाविष्णु के एक-एक रोमकूप के छिद्रों में अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के साथ घूमते रहते हैं ॥९॥

समस्तब्रह्माण्डान्तर्बहिः प्रपञ्चरहस्यं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य विविधविचित्रानन्तपरमविभूतिसमष्टि-विशेषन्समवलोक्यात्याश्चर्यामृतसागरे निमज्ज्य निरतिशयानन्दपारावारो भूत्वा समस्तब्रह्माण्डजालानि समुल्लङ्घ्यामितापरिच्छिन्नानन्ततमः सागरमृत्तीर्य मूलाविद्यापुरं दृष्ट्वा विविधविचित्रानन्तमहामाया-

विशेषैः परिवेष्टितामनन्तमहामायाशक्तिसमष्ट्याकारामनन्तदिव्य
तेजोज्वालाजालैरलङ्कृतामनन्तमहामायाविलसानां
परमाधिष्ठानविशेषाकारां शश्वदमितानन्दाचलोपरि
विहारिणीं मूलप्रकृतिजननीमविद्यालक्ष्मीमेवं ध्यात्वा
विविधोपचारैराराध्य समस्तब्रह्माण्डसमष्टिजननीं
वैष्णवीं महामायां नमस्कृत्य तया चानुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा
महाविराट्पदं प्राप ॥

उपर्युक्त गति-प्राप्त उपासक समस्त ब्रह्माण्डों के भीतर एवं बाहर के प्रपंच के रहस्य को ब्रह्मज्ञान के द्वारा जानकर तथा नाना प्रकार की विचित्र अनन्त परमैश्वर्य की समष्टिरूप विशेष को भली प्रकार देखकर अत्यन्त आश्चर्यमय अमृत सागर में गोता लगाता है और निरतिशय आनन्दसमुद्ररूप होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसमूहों को पार कर जाता है। इसी प्रकार अमित, अपरिच्छिन्न तमःसागर को पार करके, मूल अविद्यापुर को देखकर, विविध विचित्र अनन्त महामायाविशेषों से घिरी हुई, अनन्त महामायाशक्तियों की समष्टिरूपा, अनन्त दिव्य तेजोमय ज्वालामालाओं से सुशोभित, अनन्त महामायाविलासों की परम अधिष्ठानस्वरूपा, निरन्तर अमित आनन्द-पर्वत पर विहार करने वाली, मूल-प्रकृति को जननी अविद्यालक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करता है। फिर विविध उपचारों से उनकी आराधना करके, समस्त ब्रह्माण्ड-समष्टि की जननी भगवान् विष्णु की महामाया को नमस्कार करके उनसे आज्ञा लेकर और ऊपर-से-ऊपर जाकर महाविराट् पद को पाता है' ॥ १० ॥

महाविराट्स्वरूपं कथमिति । समस्ताविद्यापादको विराट्।
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां नमति सम्पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन्देव एकः ।
न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।

'महाविराट्-स्वरूप कैसा है?' समस्त अविद्यापाद विराट् है। सब ओर आँखोंवाला, सब ओर मुखोंवाला, सब ओर हाथोंवाला तथा सब ओर पैरोंवाला है। हाथों के द्वारा हाथवालों को तथा पंखों के द्वारा उड़नेवालों को युक्त करता है। यह देवता अकेला ही स्वर्ग तथा पृथिवी को उत्पन्न करता है। इसका रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। इसे कोई नेत्रों से नहीं देखता। हृदय से, बुद्धि से तथा मनसे इसका ध्यान किया जाता है। जो इसको जानते हैं, वे अमृतस्वरूप (मुक्त) हो जाते हैं' ॥ ११-१४॥

मनोवाचामगोचरमादिविराट्स्वरूपं ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य
तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा
विविधविचित्रानन्तमूलाविद्याविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं
प्राप ।

ऐसे मन तथा वाणी से अगोचर विराट्स्वरूप का ध्यान करके नाना प्रकारके उपचारों से उनकी आराधना करता है तथा उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाकर विविध विचित्र अनन्त मूल-अविद्या के विलासों को देखकर उपासक परम आश्चर्यान्वित होता है' ॥ १५ ॥

अखण्डपरिपूर्णपरमानन्दलक्षण परब्रह्मणः
समस्तस्वरूपविरोधकारिण्यपरिच्छिन्न-
तिरस्करिण्याकारा वैष्णवी महायोगमाया मूर्तिमद्भिरनन्त
महामायाजालविशेषैः परिषेविता तस्याः पुरमतिकौतुक
मत्याश्चर्यसागरानन्दलक्षणममृतं भवति ।
अविद्यासागरप्रतिबिम्बितनित्यवैकुण्ठप्रतिवैकुण्ठमिव विभाति ।

वहाँ अखण्ड परिपूर्ण परमानन्दस्वरूप परब्रह्म के समस्त स्वरूपों में विरोध प्रदर्शित करनेवाली, सभी प्रकार से विरुद्ध धर्मोंवाली, अपरिच्छिन्न परदे के आकारवाली, भगवान् विष्णु को महायोगमाया मूर्तिमान अनन्त महामायास्वरूपों से भली प्रकार सेवित हैं। उनका नगर अत्यन्त कौतुकों से पूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यसागर, आनन्दस्वरूप, शाश्वत है। अविद्यासागर में प्रतिबिम्बित नित्य वैकुण्ठ के प्रतिबिम्बरूप दूसरे वैकुण्ठ की भाँति वह प्रकाशित है॥ १६॥

उपासकस्तत्पुरं प्राप्य योगलक्ष्मीमंगमायां ध्यात्वा
विविधोपचारैराराध्य तया सम्पूजितश्चानुज्ञात-
श्चोपर्युपरि गत्वानन्तमायाविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं
प्राप॥

'उस पुर में पहुँचकर, उपासक योगलक्ष्मी अंग माया को ध्यान करके अनेक प्रकार के उपचारों से उनकी आराधना करता है तथा उनके द्वारा पूजित होकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके और ऊपर जाता है। वहाँ माया के अनन्त विलासों को देखकर वह परम आश्चर्यमें डूब जाता है'॥ १७ ॥

तत उपरि पादविभूतिवैकुण्ठपुरमाभाति ।
अत्याश्चर्यानन्तविभूतिसमष्ट्याकार
मानन्दरसप्रवाहैरलङ्कृतमभितस्तरङ्गिण्याः
प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैरनन्त
ब्रह्मवनैरभितस्ततमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तमनन्त-
चिन्मयप्रासादजालसंकुलमनादिपादविभूतिवैकुण्ठ मेवमाभाति ।
तन्मध्ये च चिदानन्दाचलो विभाति ॥

उससे ऊपर पादविभूति नामक वैकुण्ठ-नगर शोभित है। अत्यन्त आश्चर्यमय अनन्त ऐश्वर्य का समष्टिस्वरूप, आनन्दरस के प्रवाहों से भूषित, चारों ओर अमृत नदी के प्रवाह से अत्यन्त मङ्गलस्वरूप, ब्रह्मतेजो विशेष स्वरूप अनन्त ब्रह्मवनों से चारों ओर घिरा हुआ, अनन्त नित्य-मुक्तों से चारों ओर व्याप्त, अनन्त चिन्मय भवनसमूहों से भरा हुआ अनादि पादविभूति नामक वैकुण्ठ इस प्रकार सुशोभित है और उसके मध्य में चिदानन्दपर्वत शोभित है। उस पर्वत के ऊपर निरतिशय आनन्दस्वरूप दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित है। उसके मध्य में परमानन्दरूप विमान प्रकाशित है। उसके भीतर मध्यस्थान में चिन्मय आसन विराजमान है। उस आसन रूप पद्म की कर्णिका पर निरतिशय दिव्य तेजोराशि के मध्य समासीन आदि-नारायण का ध्यान करके विविध उपचारों से उनकी आराधना करता है तथा उनसे पूजित होकर, उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाता है। आवरणसहित अविद्या-अण्ड का भेदन करके, अविद्यापाद को पारकर विद्या-अविद्या की संधि (मध्यस्थान) में जो विष्वक्सेन-वैकुण्ठ नामक नगर शोभित है, साधक वहाँ पहुँचता है ॥ १८-१९ ॥

तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः ।
तदभ्यन्तरे परमानन्दविमानं विभाति ।
तदभ्यन्तरसंस्थाने चिन्मयासनं विराजते ।
तत्पद्मकर्णिकायां रतिशयदिव्यतेजोराश्यन्तरसमासीनमादिनारायणं
ध्यात्वा विविधोपचारैस्तं समाराध्य
तेनाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरिगत्वा सावरणमविद्याण्डं च भित्त्वा
विद्यापादमुल्लङ्घ्य विद्याविद्ययोः सन्धौ
विश्वक्सेनवैकुण्ठपुरमाभाति॥
अनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरभितोऽनीकं
प्रज्वलन्तमनन्तबोधानन्तबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं शुद्धबोध-
विमानावलिभिर्विराजितमनन्तानन्दपर्वतैः परमकौतुकमाभाति ।
तन्मध्ये च कल्याणाचलोपरि शुद्धानन्दविमानं विभाति । तदभ्यन्तरे
दिव्यमङ्गलासनं विराजते । तत्पद्मकर्णिकायां
ब्रह्मतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं
भगवदनन्तविभूतिविधिनिषेधपरिपालकं सर्वप्रवृत्तिसर्वहेतुनिमित्तिकं
निरतिशयलक्षणमहाविष्णूस्वरूपमखिलापवर्गपरिपालकममितविक्र
ममेवंविधं विश्वक्सेनं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय
विविधोपचारैराराध्य तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा
विद्याविभूतिं प्राप्य
विद्यामयानन्तवैकुण्ठान्परितोऽवस्थितान्ब्रह्मतेजोमया
नवलोक्योपासकः परमानन्दं प्राप ॥

'अनन्त दिव्य तेज की ज्वालामालाओं से चारों ओर निरन्तर प्रज्वलित, अनन्त ज्ञान एवं आनन्द के मूर्तिमान स्वरूपों द्वारा चारों ओर घिरा हुआ, शुद्ध ज्ञानरूप विमानावलियों से विराजित वह नगर अनन्त

आनन्दरूप पर्वतों से परम कौतुकमय प्रतीत होता है। उस पुर के मध्य में कल्याणपर्वत के ऊपर शुद्ध आनन्दरूप विमान शोभित है। उसके भीतर दिव्य मङ्गलमय आसन विराजमान है। उस आसनरूप पद्म की कणिका पर ब्रह्म-तेजोराशि के मध्य में समासीन भगवान के अनन्त ऐश्वर्यस्वरूप, विधि-निषेध के परिपालक, समस्त प्रवृत्तियों एवं सम्पूर्ण कारणों के कारणस्वरूप, निरतिशय आनन्दलक्षण, महाविष्णुस्वरूप, समस्त मोक्षों के परिपालक, अमितपराक्रमी-इस प्रकार के श्रीविष्वक्सेनजी का ध्यान करके, प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करता है। फिर विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करके, उनकी आज्ञा लेकर, और ऊपर जाकर उपासक विद्याविभूति को प्राप्त करता है। तथा विद्यामय, चारों ओर स्थित ब्रह्मतेजोमय अनन्त वैकुण्ठों को देखकर परमानन्द प्राप्त करता है’॥ २० ॥

विद्यामयाननन्तसमुद्रानतिक्रम्य ब्रह्मविद्यातरङ्गिणीमासाद्य तत्र
स्नात्वा भगवद्ध्यानपूर्वकं पुनर्निमज्ज्य मन्त्रमयशरीरमुत्सृज्य
विद्यानन्दमयामृतदिव्यशरीरं परिगृह्य नारायणसारूप्यं
प्राप्यात्मपूजां विधाय ब्रह्ममयवैकुण्ठवासिभिःसर्वैर्नित्यमुक्तैः
सुपूजितस्ततो ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्द-रसनिर्भरैः
क्रीडानन्तपर्वतैरनन्तैरभिव्याप्तं ब्रह्मविद्यामहैः
सहस्रप्राकारैरानन्दामृतमयै
र्दिव्यगन्धस्वभावैश्चिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभित-
मुपासकस्त्वेवंविधं ब्रह्मविद्यावैकुण्ठमाविश्य
तदभ्यन्तरस्थितात्यन्तोन्नतबोधानन्दप्रासादाग्रस्थित-
प्रणवविमानोपरिस्थितामपारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदेवता-
ममोघनिजमन्दकटाक्षेणानादिमूलाविद्याप्रलयकरीमद्वितीया-

मेकामनन्तमोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीमेवं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य पुष्पाञ्जलिं समर्प्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषैस्तयाभिपूजितस्तदनुगतश्चोपर्युपरि गत्वा ब्रह्मविद्यातीरे गत्वा बोधानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य बोधानन्दमयाननन्तसमुद्रानतिक्रम्य गत्वागत्वा ब्रह्मवनेषु परममङ्गलाचलश्रोणीषु ततो बोधानन्दविमानपरम्परासूपासकः परमानन्दं प्राप ॥

वहाँ से आगे विद्यामय अनन्त समुद्रों को पार करके ब्रह्मविद्या नदी को पाकर, उसके पार पहुँचकर, वहाँ स्नान करके, भगवान का ध्यान करते हुए उपासक पुनः गोता लगाता है और मन्त्रमय शरीर को छोड़कर, विद्यानन्दमय अमृत दिव्य शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार नारायण की सरूपता (उनके-जैसा विग्रह) प्राप्त करके, आत्मा की पूजा करता है, फिर नित्यमुक्त सभी वैकुण्ठवासियों द्वारा भलीभाँति पूजित होकर, आनन्द-रस से भरपूर ब्रह्मविद्या-प्रवाहों से, अनन्त क्रीडानन्द नामक पर्वतों से चारों ओर व्याप्त, ब्रह्मविद्यामय सहस्रों प्राचीरों से तथा आनन्दामृत से पूर्ण स्वाभाविक दिव्य गन्ध से युक्त चिन्मय अनन्त ब्रह्मवनों से अत्यन्त शोभित-इस प्रकार के ब्रह्मविद्या-वैकुण्ठ में उपासक प्रवेश करता है। उसके भीतर अवस्थित अत्यन्त उन्नत बोधानन्दमय भवन के अग्र भाग में स्थित प्रणवरूप विमान के ऊपर विराजमान अपार ब्रह्मविद्या-साम्राज्य की अधिष्ठातृ देवी, अपने अमोघ मन्दकटाक्ष से अनादि मूल-अविद्या को नष्ट कर देनेवाली, एकमात्र अद्वितीया, अनन्त मोक्ष साम्राज्यलक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करके, प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके अनेक प्रकार के उपचारों से उनकी आराधना करता है। फिर पुष्पाञ्जलि समर्पित

करके, विशिष्ट स्तोत्रों से उनकी स्तुति करके, उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर, उनकी आज्ञा लेकर उन्हीं के साथ और ऊपर जाता है। वहाँ ब्रह्मविद्या के तटपर पहुँचकर, ज्ञान एवं आनन्दमय अनन्त वैकुण्ठों को देखकर, निरतिशय आनन्द प्राप्त करता है तथा ज्ञानानन्दमय अनन्त समुद्रों को पार करके, ब्रह्मवनों में तथा परम मङ्गलमय पर्वत-शिखरपर बराबर चलते हुए, ज्ञानानन्दरूप विमानों की क्रमबद्ध पंक्तियों में पहुँचकर उपासक परमानन्द लाभ करता है'॥ २१॥

ततः श्रीतुलसीवैकुण्ठपुरमाभाति
परमकल्याणमनन्तविभवममिततेजोराश्याकारमनन्तब्रह्मतेजोराशि-
समष्ट्याकारं चिदानन्दमयानेकप्राकारविशेषैः
परिवेष्टितममितबोधानन्दाचलोपरिस्थितं बोधानन्दतरङ्गिण्याः
प्रवाहैरतिमङ्गलं
निरतिशयानन्दैरनन्तवृन्दावनैरतिशोभितमखिलपवित्राणां परमपवित्रं
चिद्रूपैरनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तमानन्दमयानन्त
विमानजलैरलङ्कृतममिततेजोराश्यन्तर्गतदिव्यतेजोराशिविशेष

उसके बाद तुलसी नाम का वैकुण्ठ-नगर प्रकाशित है। वह परम कल्याणरूप, अनन्त ऐश्वर्ययुक्त, अमित तेजोराशिस्वरूप, अनन्त ब्रह्मतेजो राशि को समष्टिस्वरूप, चिदानन्दमय अनेक प्राकार-विशेषों (चहारदीवारियों) से घिरा हुआ, अमितबोधमय आनन्दपर्वत के ऊपर स्थित, बोधानन्द-नदी के प्रवाह से अत्यन्त मङ्गलमय, निरतिशयानन्दस्वरूप अनन्त तुलसी-वनों से अत्यन्त शोभित,

सम्पूर्ण पवित्रों में परम पवित्र, चित्स्वरूप, अनन्त, नित्यमुक्त पुरुषों से अत्यधिक संकुल तथा आनन्दमय, अनन्त विमान-समूहों से सुशोभित, अमित तेजोराशि के अन्तर्गत दिव्य तेज:स्वरूप है॥ २२ ॥

उपासकस्त्वेवमाकारं तुलसीवैकुण्ठं प्रविश्य
तदन्तर्गतदिव्यविमानोपरिस्थितां सर्वपरिपूर्णस्य महाविष्णोः
सर्वाङ्गेषु विहारिणीं निरतिशयसौन्दर्यलावण्याधिदेवतां
बोधानन्दमयैरनन्तनित्यपरिजनैः परिषेवितां श्रीसखीं
तुलसीमेवं लक्ष्मीं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय
विविधोपचारैराराध्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषैस्तयाभिपूजित-
स्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरिगत्वा परमानन्दतरङ्गिण्यास्तीरे गत्वा तत्र
परितोऽवस्थिताञ्छुद्धबोधानन्दमयाननन्त-
वैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य तत्रैत्यैश्चिद्रूपैः
पुराणपुरुषैश्चाभिपूजितस्ततो गत्वागत्वा ब्रह्मवनेषु
दिव्यगन्धानन्दपुष्पवृष्टिभिः समन्वितेषु दिव्य मङ्गलालयेषु
निरतिशयानन्दामृतसागरेष्वमिततेजो-
राश्याकारेषु कल्लोलवनसंकुलेषु ततोऽनन्तशुद्धबोध
विमानजालसंकुलानन्दाचलश्रोणीषूपासकस्तत उपर्युपरि गत्वा
विमानपरम्परास्वनन्ततेजःपर्वतराजिष्वेवं क्रमेण प्राप्य
विद्यानन्दमयोः सन्धिं तत्रानदतरङ्गिण्याः प्रवाहेषु स्नात्वा बोधानन्दवनं
प्राप्य शुद्धबोधपरमानन्दानन्दाकारवनं सन्ततामृतपुष्पवृष्टिभिः
परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरभिव्याप्तं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः
परमकौतुकमपरिच्छिन्नानन्द सागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिशोभितं
तन्मध्ये च शुद्धबोधानन्दवैकुण्ठं यदेव ब्रह्मविद्यापादवैकुण्ठं
सहस्रानन्दप्राकारैः समुज्ज्वलति ।
अनन्तानन्दविमानजालसंकुलमनन्तबोधसौध-

विशेषैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तं क्रीडानन्तमण्डप विशेषैर्विशेषितं
बोधानन्दमयानन्तपरमच्छत्रध्वजचामरवितानतोरणैरलङ्कृतं
परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्तदिव्यतेजःपर्वत-
समष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्धबोधानन्तमण्डलं
वाचामगोचरानन्दब्रह्मतेजोराशिमण्डलमाखण्डलविशेषं
शुद्धानन्दसमष्टिमण्डलविशेषमखण्डचिद्घनानन्द विशेषमेवं
तेजोमण्डलविधं बोधानन्दवैकुण्ठ

उपासक ऐसे आकारवाले तुलसी-वैकुण्ठ में प्रवेश करके, उसके भीतर दिव्य विमान के ऊपर विराजमान, सर्वपरिपूर्ण महाविष्णु के सर्वाङ्गों में विहार करनेवाली, निरतिशय सौन्दर्य लावण्य की अधिष्ठात्री देवी, बोधानन्दमय अनन्त नित्य परिजनों से परिसेविता, महालक्ष्मी की सखी श्रीतुलसी लक्ष्मी का इस प्रकार ध्यानकर, उनकी प्रदक्षिणा तथा उन्हें नमस्कार करता है तथा अनेक प्रकार के उपचारों से उनकी पूजा करके, स्तोत्रविशेष से स्तुति करता है। फिर उनके द्वारा भली प्रकार पूजित होकर तथा वहाँ के निवासियों द्वारा भलीभाँति पूजित होकर, उनकी आज्ञा पाकर और ऊपर जाकर परमानन्द नदी के किनारे पहुँचता है। वहाँ चारों ओर स्थित शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनन्त वैकुण्ठों को देखकर, निरतिशय आनन्द प्राप्त करता है तथा वहीं के निवासी चिद्रूप (ज्ञानस्वरूप) पुराणपुरुषों द्वारा भली प्रकार पूजित होता है। आगे दिव्य गन्ध एवं आनन्दमय पुष्पवृष्टि समन्वित दिव्य मङ्गल-भवन ब्रह्मवनों में, अमित तेजोराशि स्वरूप एवं तरंग मालाओंसे परिपूर्ण निरतिशय आनन्दरूप अमृत के सागरों में, फिर अनन्त शुद्ध ज्ञानस्वरूप विमान-समुदायों से भरे आनन्दगिरि के शिखर समूहों में बराबर चलते हुए उपासक वहाँ से भी ऊपर-

ऊपर विमान पंक्तियों तथा अनन्त तेजोमय पर्वतपङ्क्तियों में चलकर, इस क्रम से विद्यापाद तथा आनन्दपाद की संधि (मध्यस्थान) में पहुँचता है। वहाँ आनन्दनदी के प्रवाह में स्नान करके, बोधानन्द-वन में पहुँचकर देखता है कि वहाँ अमृतमय पुष्पों की निरन्तर वर्षा से युक्त शुद्धबोधमय परमानन्द-स्वरूप वन है। परमानन्दरूप प्रवाहों से वह वन चारों ओर व्याप्त है। मूर्तिमान् परम मङ्गलों से परमाश्चर्यस्वरूप हो रहा है। वह अपार आनन्दसिन्धुरूप है। क्रीडानन्द नामक पर्वतों द्वारा सब ओर शोभित है। उसके बीच में शुद्ध बोधानन्दमय वैकुण्ठ है। यही ब्रह्मविद्यापाद का वैकुण्ठ है, जो सहस्रों आनन्द-प्राचीरों से प्रज्वलित (भलीभाँति प्रकाशमान) है। वह अनन्त आनन्दरूपः विमानसमूहों से भरा हुआ, अनन्त बोधमयविशेष भवनों से चारों ओर निरन्तर जगमगाता हुआ अनन्त क्रीडा-मण्डंपों से युक्त, बोध-आनन्दमय, अनन्त श्रेष्ठ छत्र, ध्वजाएँ, सँवर, वितान (बंधन वार) तथा द्वारों से अलंकृत, परमानन्द-व्यूहरूप (घनीभूत परमानन्दविग्रह) नित्य-मुक्तों द्वारा चारों ओरसे व्याप्त, अनन्त दिव्यतेजोमय पर्वतों का समष्टिरूप, अपरिच्छिन्न अनन्त शुद्धबोधमय आनन्द का मण्डल, वाणी से अगोचर (अवर्थ्य), आनन्दमय ब्रह्मतेजोराशि-मण्डल, अखण्ड तेजोमण्डलरूप, शुद्धानन्दस्वरूप का समष्टि-मण्डलरूप, अखण्ड चिङ्घनानन्द-स्वरूप है' ॥२३॥

उपासकः प्रविश्य तत्रत्यैः सर्वैरभिपूजितः परमानन्दाचलोपर्यखण्ड-बोधविमानं प्रज्वलति । तदभ्यन्तरे चिन्मयासनं विराजते । तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तदभ्यन्तरे समासीन-मादिनारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय

विविधोपचारैः सुसम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं समर्प्य स्तुत्वा
स्तोत्रविशेषैः स्वरूपेणावस्थितमुपासकमवलोक्य तमुपासक-
मादिनारायणः स्वसिंहासने सुसंस्थाप्य तद्वैकुण्ठवासिभिः
सर्वैः समन्वितः समस्तमोक्षसाम्राज्यपट्टाभिषेकमुद्दिश्य
मन्त्रपूतैरपासकमानन्दकलशैरभिषिच्य दिव्यमङ्गल-
महावाद्यपुरःसरं विविधोपचारैरभ्यर्च्य मूर्तिमद्भिः
सर्वैः स्वचिह्नैरलङ्कृत्य प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय
त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते त्वमेवाहं
अहमेवत्वं इत्यभिधायेत्युक्त्वादिनारायणस्तिरोदधे तदेत्युपनिषत् ॥

उपासक इस प्रकारके बोधानन्दमय वैकुण्ठ में प्रवेश करके, वहाँ के सभी निवासियों द्वारा भलीभाँति पूजित होता है। परमानन्द पर्वतपर अखण्ड बोधरूप विमान प्रकाशमय रूप में स्थित है। उसके भीतर चिन्मय आसन विराजमान है। उस आसन के ऊपर अखण्ड आनन्दमय तेजोमण्डल सुशोभित है। उसके मध्य में समासीन आदिनारायण का ध्यान करके, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके, उपासक विविध प्रकार के उपचारों से उनकी भली प्रकार पूजा करता है तथा पुष्पाञ्जलि निवेदित करके, स्तोत्र-विशेष से स्तुति करता है। अपने नारायण स्वरूप से अवस्थित उपासक को देखकर, उस उपासक को आदिनारायण अपने सिंहासन पर भली प्रकार बैठाकर, उस वैकुण्ठ के सभी निवासियों के साथ समस्त मोक्ष-साम्राज्य के पट्टाभिषेक (राजतिलक) के उद्देश्यसे उसे मन्त्रों द्वारा पवित्र किये हुए आनन्दस्वरूप कलशों के जल द्वारा स्नान कराते हैं तथा दिव्य मङ्गलस्वरूप महावाद्यों के घोष के साथ नाना प्रकार के उपचारोंसे उसकी भली प्रकार अर्चा करते हैं। फिर अपने सभी

मूर्तिमान् अलंकारों से अलंकृत करके, उसकी प्रदक्षिणा तथा उसको नमस्कार करते हैं और 'तुम ब्रह्म हो। मैं ब्रह्म हूँ। हम दोनों में अन्तर नहीं है। तुम्हीं 'मैं', मेरे स्वरूप हो। मैं ही तुम, तुम्हारा स्वरूप हूँ।' ऐसा उच्चारणकर (दीक्षा देकर), ऐसा कहकर, उसका तत्त्व प्रत्यक्ष कराकर, उस समय आदिनारायण अन्तर्हित हो जाते हैं ॥ २४-२५ ॥

॥ इति षष्ठोध्यायः॥

॥ छठा अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः॥

॥ सातवाँ अध्याय॥

अथोपासकस्तदाज्ञया नित्यं गरुडमारुह्य वैकुण्ठवासिभिः सर्वैः
परिवेष्टितो महासुदर्शनं पुरस्कृत्य विश्वक्सेनपरिपालितश्चोपर्युपरि
गत्वा ब्रह्मानन्दविभूतिं प्राप्य सर्वत्रावस्थिताब्रह्मानन्द-
मयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दसागरो
भूत्वात्मारामानन्दविभूतिपुरुषाननन्तानवलोक्य
तान्सर्वानुपचारैः समभ्यर्च्य तैः सर्वैरभिपूजितश्चोपासकस्तत उपर्युपरि
गत्वा ब्रह्मानन्दविभूतिं प्राप्यानन्तदिव्यतेजः
पर्वतैरलङ्कृतान्परमानन्दलहरीवनशोभितानसंख्याकानानन्दसमुद्रा
नतिक्रम्य
विविधविचित्रानन्तपरमतत्त्वविभूतिसमष्टिविशेषान्परमकौतुकान्ब्रह्मा
नन्दविभूतिविशेषनतिक्रम्योपासकः
परमकौतुकं प्राप ।

भगवान् नारायण के पुनः प्रकट होने पर उपासक उनकी आज्ञा से नित्य गरुडपर चढ़कर, समस्त वैकुण्ठवासियों से घिरा हुआ, महासुदर्शन को आगे करके, विष्वक्सेन द्वारा परिपालित (रक्षित) हो,

ऊपर जाकर ब्रह्मानन्दविभूति में पहुँच जाता है। वहाँ वह सर्वत्र स्थित ब्रह्मानन्दमय अनन्त वैकुण्ठों का दर्शन करता है; फिर निरतिशय आनन्द-समुद्ररूप होकर वह आत्माराम, आनन्दविभूतिस्वरूप अनन्त पुरुषों को देखता और उन सबका उपचारों से भलीभाँति अर्चन करता है। फिर उन सबसे भी पूजित होकर उपासक, वहाँ से ऊपर जाते हुए, ब्रह्मानन्दविभूति में पहुँच जाता है। तत्पश्चात् अनन्त दिव्य तेजोमय पर्वतों से अलंकृत, परमानन्दरूपतरंगमालाओं से शोभित असंख्य आनन्द-समुद्रों को पार करके तथा विविध विचित्र अनन्त परमतत्त्व-विभूति-समष्टिस्वरूपों को एवं परमाश्चर्यरूप ब्रह्मानन्दविभूति-स्वरूपों को भी अतिक्रमण करके उपासक परमाश्चर्य में डूब जाता है' ॥ १ ॥

ततः सुदर्शनवैकुण्ठपुरमाभाति नित्यमङ्गलमनन्तविभवं
सहस्रानन्दप्रकारपरिवेष्टितमयुतकुक्ष्युपलक्षित-
मनन्तोत्कटज्वलदरमण्डलं निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलं
वृन्दारकपरमानन्दं शुद्धबुद्धस्वरूपमनन्तानन्द-
सौदामिनीपरमविलासं
निरतिशयपरमानन्दपारावारमनन्तैरानन्दपुरुषैश्चिद्रूपैरधिष्ठितम् ।

इसके पश्चात् सुदर्शन नामक वैकुण्ठ नगर प्रकाशित होता है। वह नित्य मङ्गलरूप, अनन्त वैभवपूर्ण, सहस्रों आनन्दरूप प्राचीरों (चारदीवारियों) से घिरा, दस सहस्र कक्षों से युक्त, अनन्त उत्कट प्रज्वलित, प्रकाशमय अरों के मण्डल से युक्त, निरतिशय दिव्य तेजोमण्डलरूप, देवताओं के लिये भी परमानन्दस्वरूप, शुद्ध-

बुद्धस्वरूप, अनन्त आनन्दरूप विद्युत के परम विलास के समान प्रकाशमान, निरतिशय परमानन्दसागर तथा अनन्त चिद्रूप (ज्ञानमूर्ति) आनन्दमय पुरुषों से अधिष्ठित है' ॥ २॥

तन्मध्ये च सुदर्शनं महाचक्रम् । चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम । लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम् । ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके सुधितां दधातु । अयुतारं ज्वलन्तमयुतारसमष्ट्याकरं निरतिशयविक्रमविलासमनन्त-दिव्यायुधदिव्यशक्तिसमष्टिरूपं महाविष्णोरनर्गलप्रताप-विग्रहमयुतायुतकोटियोजनविशालमनन्तज्वालजालैरलङ्कृतं समस्तदिव्यमङ्गलनिदानमनन्तदिव्यतीर्थानां निजमन्दिरमेवं सुदर्शनं महाचक्रं प्रज्वलति ।

उसके मध्यमें सुदर्शन नामक महाचक्र है। वह (नित्य) गतिशील, पवित्र, विस्तृत एवं पुरातन है, जिसके द्वारा पवित्र होकर मनुष्य पापों से तर जाता है—उस पवित्र, शुद्ध, परमपावन चक्र के द्वारा पवित्र होकर हम अतिपापरूप शत्रु को पार कर जायँगे। वह गतिशील चक्र भगवद्धाम का द्वाररूप है; वह ज्वालाओं से परिपूर्ण, पवित्र, ज्योतिर्मय, अतिशय प्रकाशमान, अत्यन्त तेजस्वी तथा अमृत की असंख्य धाराओं को स्रवित करनेवाला चक्र हमको लोक में सुबुद्धियुक्त बनाये।' श्रुति इस प्रकार जिसकी स्तुति करती है, वह दस सहस्र अरोंसे युक्त, प्रज्वलित, दस सहस्र अरोंका समष्टिरूप एवं निरतिशय पराक्रम का विलास है, वह अनन्त दिव्यायुधों एवं दिव्य शक्तियों का समष्टिरूप, महाविष्णु का मूर्तिमान् अमोघ प्रताप

अयुतायुत-कोटि योजन विशाल, अनन्त ज्वाला-मालाओं से अलंकृत समस्त दिव्य मंगलों का निदान (आदिकारण) तथा अनन्त दिव्य तीर्थो का निज मन्दिरस्वरूप सुदर्शन महाचक्र इस प्रकार प्रज्वलित होता रहता है"॥ ३-६॥

तस्य नाभिमण्डलसंस्थाने उपलक्ष्यते
निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः। तन्मध्ये च सहस्रारचक्रं प्रज्वलति ।
तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं परमानन्दसौदामिनीनिचयोज्ज्वलम्।
तदभ्यन्तरसंस्थाने षट्शतारचक्रं प्रज्वलति ।
तस्यामितपरमतेजः परमविहारसंस्थानविशेषं विज्ञानघनस्वरूपम् ।
तदन्तराले त्रिशतारचक्रं विभाति । तच्च
परमकल्याणविलासविशेषमनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकरम् ।
तदभ्यन्तरे शतारचक्रमाभाति । तच्च परमतेजोमण्डल विशेषम् ।
तन्मध्ये षष्ट्यरचक्रमाभाति । तच्च ब्रह्मतेजःपरमविलासविशेषम् ।
तदभ्यन्तरसंस्थाने षट्कोणचक्रं प्रज्वलति ।
तच्चापरिच्छिन्नानन्तदिव्यतेजोराश्याकरम् । तदभ्यन्तरे महानन्दपदं
विभाति । तत्कर्णिकायां सूर्येन्दुवह्निमण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति ।
तत्रोपलक्ष्यते निरतिशयदिव्यतेजोराशिः ।तदभ्यन्तरसंस्थाने
युअगपदुदितानन्तकोटिरविप्रकाशः सुदर्शनपुरुषो विराजते ।
सुदर्शनपुरुषो महाविष्णुरेव । महविष्णोः
मस्तासाधारणचिह्नचिह्नितः। एवमुपासकः सुदर्शनपुरुष ध्यात्वा
विविधोपचारैराराध्य
प्रदक्षिणनमस्कारान्विधायोपासकस्तेनाभिपूजितस्तदनुज्ञात-
श्चोपर्युपरि गत्वा परमानन्दमयानन्तवैकुण्ठानवलोक्योपासकः
परमानन्दं प्राप ।

'उस (चक्र)-के नाभिमण्डलस्थान में निरतिशय आनन्दमयी दिव्य तेजोराशि लक्षित होती है। उसके मध्य में सहस्रारचक्र प्रज्वलित है। वह सहस्रार चक्र अखण्ड दिव्य तेजोमण्डल के आकार का तथा परमानन्दमय विद्युत पुंज के समान उज्वल है। उसके मध्यमें छ: सौ अरों का चक्र प्रज्वलित है। उसका भी स्वरूप अमित, परम तेजोमय, श्रेष्ठविहार का स्थान एवं विज्ञान का घनीभूत पुंज है। उसके मध्य में तीन सौ अरों वाला चक्र प्रकाशित है। वह भी परम कल्याण का विलासस्वरूप तथा अनन्त चिन्मय सूर्यो का समष्टिरूप है। उसके भीतर सौ अरों का चक्र प्रकाशमान है। वह भी परम तेजोमण्डलरूप है। उसके बीच में साठ अरों का चक्र प्रकाशित है। वह ब्रह्मतेज का परम विलासरूप है। उसके भीतरी भाग में षट्कोणचक्र प्रज्वलित है। वह अपरिच्छिन्न अनन्त दिव्य तेजोराशिस्वरूप है। उसके भीतर महानन्दपद शोभित है। उसकी कर्णिका में चिन्मय सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के मण्डल प्रज्वलित हैं। वहाँ निरतिशय दिव्य तेजोराशि दिखायी पड़ती है। उसके भीतरी भाग में एक साथ उदित अनन्तकोटि सूर्यो के समान प्रकाशमय सुदर्शन-पुरुष विराजमान हैं। सुदर्शन-पुरुष महाविष्णु ही हैं; क्योंकि वे महाविष्णु के समस्त असाधारण चिह्नों से चिह्नित हैं। 'उपासक इस प्रकार सुदर्शन-पुरुष का ध्यान करके अनेक प्रकार के उपचारों से उनकी आराधना करके प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करता है; फिर वह उपासक उनके द्वारा भी भली प्रकार पूजित होकर, उनकी आज्ञा प्राप्त कर ऊपर को जाता हुआ परमानन्दमय अनन्त वैकुण्ठों को देखकर परमानन्द प्राप्त करता है॥७-१५ ॥

तत उपरि विविधविचित्रानन्तचिद्विलासविभूति-
विशेषानतिक्रम्यानन्तपरमानन्दविभूतिसमष्टिविशेषानन्त-
निरतिशयानन्तसमुद्रानतीत्योपासकः क्रमेणाद्वैतसंस्थानं प्राप ॥

'उससे ऊपर विविध विचित्र अनन्त चिद्विलासमय विभूतिस्वरूपों को पार करके तथा अनन्त परमानन्दविभूति के समष्टिरूप अनन्त निरतिशय आनन्द-समुद्रों को लाँघकर उपासक क्रमशः अद्वैत-संस्थान (धाम) को प्राप्त होता है'॥ १६ ॥

कथमद्वैतसंस्थानम् ।
अखण्डानन्दस्वरूपमनिर्वाच्यमतिबोधसागरममितानन्दसमुद्रं
विजातीयविशेषविवर्जितं सजातीयविशेषविशेषितं
निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तब्रह्मानन्दसमष्टिकन्दं
परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवद्यं निराश्रय-
मतिनिर्मलानन्तकोटिरविप्रकाशैकस्फुलिङ्गमन-
न्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं
मनोवाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपमनाधार-
मादिमध्यान्तशून्यं कैवल्यं परमं शान्तं
सूक्ष्मतरं महतो महत्तरमपरिमितानन्दविशेषं
शुद्धबोधानन्दविभूतिविशेषमनन्तानन्दविभूति-
विशेषसमष्टिरूपमक्षरमनिर्देश्यं कूटस्थ-
मचलं ध्रुवमदिग्देशकालमन्तर्बहिश्च तत्सर्वं
व्याप्य परिपूर्णं परमयोगिभिर्विमृग्यं देशतः
कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं निरन्तराभिनवं

नित्यपरिपूर्णमखण्डानन्दामृतविशेषं शाश्वतं
परमं पदं निरतिशयानन्दानन्ततटित्पर्वताकार-
मद्वितीयं स्वयम्प्रकाशमनिशं ज्वलति । परमानन्द-
लक्षणापरिच्छिन्नानन्तपरंज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति ।

अद्वैत-संस्थान (कैवल्यधाम) कैसा है? अखण्ड आनन्दस्वरूप, अनिर्वचनीय, अमितबोधसागर, अपार आनन्दका समुद्र, विजातीय विशेषताओं (विशेष)-से रहित, सजातीय विशेषताओंसे युक्त, निरवयव, निराधार, निर्विकार, निरञ्जन, अनन्त, ब्रह्मानन्द-समष्टिका घनीभाव, परमचिंद्विलासका समष्टिस्वरूप, निर्मल, निष्कलङ्क एवं दूसरे किसीके आश्रयसे रहित है। अत्यन्त निर्मल अनन्तकोटि सूर्योंके प्रकाश उसके सम्मुख एक चिनगारीके समान हैं; जो अनन्त उपनिषदोंका अर्थस्वरूप, समस्त प्रमाणोंसे अतीत, मन एवं वाणीका अविषय और नित्यमुक्तस्वरूप है। उसका कोई आधार नहीं है; वह आंदि-मध्य-अन्तरहित, कैवल्यरूप, परम शान्त, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर, महान्से भी परमं महान्, अमित आनन्दस्वरूप, शुद्ध-बोध-आनन्दऐश्वर्यरूप, अनन्त आनन्दमय स्वरूपोंका समष्टिरूप, अविनाशी अनिर्देश्य, कूटस्थ (निर्विकार), अचल, ध्रुव, दिशा-देश एवं कालसे रहित, भीतर और बाहर से भी सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करके परिपूर्ण, परम योगियों द्वारा अन्वेषणीय, देशकल तथा वस्तु के परिच्छेद से रहित, निरन्तर नूतन, नित्य परिपूर्ण, अखण्ड आनन्द अमृतरूप, शाश्वत, परमपंद, निरतिशय आनन्दमय अनन्त विद्युत्पर्वतों के समान, अद्वितीय तथा अपने ही प्रकाश से निरन्तर

प्रकाशित है। वहाँ परमानन्दस्वरूप अपरिच्छिन्न अनन्त परम ज्योति, जो शाश्वत है, निरन्तर प्रकाशमान है ॥ १७-१८॥

तदभ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्दचिद्रूपाचलमखण्डपरमानन्दविशेषं
बोधानन्दमहोज्ज्वलं नित्यमङ्गलमन्दिरं चिन्मथनाविर्भूतं
चित्सारमनन्ताश्चर्यसागरममिततेजोराश्यन्तर्गत-
तेजोविशेषमनन्तानन्दप्रवाहैरलङ्कृतं निरतिशयानन्दपारावाराकारं
निरुपमनित्यनिरवद्यनिरतिशयनिरवधिकतेजोराशिविशेषं
निरतिशयानन्दसहस्रप्राकारैरलङ्कृतं शुद्धबोधसौधावलि-
विशेषैरलङ्कृतं चिदानन्दमयानन्तदिव्यारामैः सुशोभितं
शश्वदमितपुष्पवृष्टिभिः समन्ततः सन्ततम् । तदेव त्रिपाद्विभूति
वैकुण्ठस्थानं तदेव परमकैवल्यम् । तदेवाबाधितपरमतत्त्वम् ।
तदेवानन्तोपनिषद्विमृग्यम् । तदेव परमयोगिभिर्मुमुक्षिभिः
सर्वैराशास्यमानम् । तदेव सद्घनम् । तदेव चिद्घनम् ।
तदेवानन्दघनम् । तदेव
शुद्धबोधघनविशेषमखण्डानन्दब्रह्मचैतन्याधिदेवतास्वरूपम् ।
सर्वाधिष्ठानमद्वयपरब्रह्मविहारमण्डलं
निरतिशयानन्दतेजोमण्डलमद्वैतपरमानन्दलक्षण-
परब्रह्मणः परमाधिष्ठानमण्डलं निरतिशय
परमानन्दपरममूर्तिविशेषमण्डलमनन्तपरम-
मूर्तिसमष्टिमण्डलं निरतिशयपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः
परममूर्तिपरमतत्त्वविलासविशेषमण्डलं
बोधानन्दमयानन्तपरमविलासविभूतिविशेषसमष्टि
मण्डलमनन्तचिद्विलासविभूतिविशेषसमष्टिमण्डल-
मखण्डशुद्धचैतन्यनिजमूर्तिविशेषविग्रहं
वाचामगोचरानन्तशुद्धबोधविशेषविग्रहमनन्तानन्द-

समुद्रसमष्ट्याकारमनन्तबोधाचलैरधिष्ठितं
निरतिशयानन्दपरममङ्गलविशेषसमष्ट्याकार-
मखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परममूर्ति
परमतेजःपुञ्जपिण्डविशेषं चिद्रूपादित्यमण्डलं
द्वात्रिंशद्व्यूहभेदैरधिष्ठितम् । व्यूहभेदाश्च केशवादिचतुर्विंशतिः ।
सुदर्शनादिन्यासमन्त्राः । सुदर्शनादि यन्त्रोद्धारः ।
अनन्तगरुडविश्वक्सेनाश्च निरतिशयानन्दाश्च ।

उसके भीतर बोधानंन्द-महोज्वल, नित्य मङ्गलमन्दिर, चिन्मय समुद्र के मन्थन से उत्पन्न चित्साररूप, अनन्त आश्चर्यो का सागर, अमित तेजोराशि के अन्तर्गत विशेष तेज:स्वरूप, अनन्त आनन्द-प्रवाहों से अलंकृत निरतिशय आनन्द-सागरस्वरूप, निरुपम, नित्य, निर्दोष, निरतिशय, निस्सीम तेजोराशिरूप, निरतिशय आनन्दस्वरूप सहस्रों प्रकारों (चारदीवारियों) से अलंकृत, शुद्ध बोधमय भवनसमूहों से भूषित, चिदानन्दमय अनन्त दिव्य उपवनों से सुशोभित, निरन्तर होनेवाली अपार पुष्पवर्षा से चारों ओर से व्याप्त धाम है। वही त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ-स्थान है।' वही परम कैवल्य है। वही अबाधित परमतत्त्व है। वही अनन्त उपनिषदों द्वारा अन्वेषणीय पद है। वही समस्त परमयोगियों तथा मुमुक्षुओं द्वारा चाहा जाता है। वही घनीभूत सत् है। वही घनीभूत चित् है। वही घनीभूत आनन्द है। वही घनीभूत शुद्धबोधरूप अखण्ड आनन्दमय ब्रह्मचैतन्य का अधिदेवता-स्वरूप है। सबका अधिष्ठान, अद्वय परब्रह्म को विहार-मण्डल, निरतिशय आनन्दरूप तेजोमण्डल, अद्वैत परमानन्दरूप परब्रह्म का परम अधिष्ठानरूप मण्डल, निरतिशय परमानन्द का परममूर्तस्वरूप मण्डल, अनन्त श्रेष्ठ मूर्तियों का समष्टिरूप मण्डल, निरतिशय

परमानन्दरूप-स्वरूप परमब्रह्म की परम मूर्तिरूप परमतत्त्व के विलास का स्वरूपभूत मण्डल, बोधानन्दमय अनन्त परम विलासों की विभूतियों का समष्टिरूप मण्डल, अनन्त चिद्विलास की विभूतियों का समष्टिरूप मण्डल, अखण्ड शुद्ध चैतन्य का निजमूर्तिरूप विग्रह, वाणी के अगोचर अनन्त शुद्धबोध का विग्रहरूप, अनन्त आनन्दसमुद्रों का समष्टिरूप, अनन्त बोधस्वरूप पर्वतों तथा अनन्त बोधानन्दरूप पर्वतों से अधिष्ठित, निरतिशय आनन्द एवं परम मङ्गलमय स्वरूपों का समष्टिरूप, अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म की परममूर्ति के परम तेजःपुंज का पिण्डरूप, चिद्रूप (ज्ञानस्वरूप) सूर्य का मण्डलरूप तथा बत्तीस विभिन्न व्यूहों से अधिष्ठित है। केशवादि चौबीस व्यूह, सुदर्शन आदि के न्यास-मन्त्र, सुदर्शनादि यन्त्रों का उद्धार, अनन्त-गरुड़-विष्वक्सेनादि (पार्षद) तथा निरतिशय आनन्दरूप भी उसी में हैं' ॥ १९-२० ॥

आनन्दव्यूहमध्ये सहस्रकोटियोजनायतोन्नत चिन्मयप्रासादं ब्रह्मानन्दमयविमानकोटिभिरतिमङ्गलमनन्तोपनिषदर्थारामजालसंकुलं सामहंसकूजितैरतिशोभितमानन्दमयानन्तशिखरै-रलङ्कृतं चिदानन्दरसनिर्झरैरभिव्याप्तमखण्डानन्दतेजोराश्यन्तरस्थितमनन्तानन्दाश्चर्यसागरं तदभ्यन्तरसंस्थानेऽनन्तकोटिरविप्रकाशातिशयप्राकारं निरतिशयानन्दलक्षणं प्रणवाख्यं विमानं विराजते । शतकोटिशिखरैरानन्दमयैः समुज्ज्वलति । तदन्तराले बोधानन्दाचलोपर्यष्टाक्षरीमण्टपो विभाति । तन्मध्ये च

चिदानन्दमयवेदिकानन्दवनविभूषिता । तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्दतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थानेऽष्टाक्षरीपद्मविभूषितं चिन्मयासनं विराजते । प्रणवकर्णिकायां सूर्येन्दुवह्निमण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति । तत्राखण्डानन्दतेजोराश्यन्तर्गतं परममङ्गलाकारमनन्तासनं विराजते । तस्योपरि च महायन्त्रं प्रज्वलति । निरतिशय ब्रह्मानन्दपरममूर्तिमहायन्त्रं समस्तब्रह्मतेजोराशिसमष्टिरूपं चित्स्वरूपं निरञ्जनं परब्रह्मस्वरूपं परब्रह्मणः परमरहस्यकैवल्यं महायन्त्रमय परमवैकुण्ठनारायणयन्त्रं विजयते ।

उपर्युक्त आनन्द-व्यूह के बीच में सहस्रकोटि योजन विस्तीर्ण उन्नत चिन्मय प्रासाद है। (वह) ब्रह्मानन्दमय करोड़ों विमान से युक्त एवं अत्यन्त मङ्गलस्वरूप है। अनन्त उपनिषदों के अर्थस्वरूप उपवन-समुदायों से भरा है। सामवेदरूपी हंसों के कलनाद से उसकी अत्यन्त शोभा होती है। आनन्दमय अनन्त शिखरों से वह अलङ्कृत है। चिदानन्द-रस के झरनों से व्याप्त है। अखण्डानन्दरूप तेजोराशि के भीतर स्थित है। अनन्त आनन्दमय आश्चर्यो का समुद्र है। उसके भीतरी भाग में निरतिशय आनन्दस्वरूप प्रणव नामक विमान है, जिसका प्रकार अनन्तकोटि सूर्यो के प्रकाशसे भी अतिशय प्रकाशमय है। वह विमान आनन्दमय शतकोटि शिखरोंसे जगमगा रहा है। उसके भीतर बोधानन्द-पर्वत के ऊपर अष्टाक्षरीमण्डप सुशोभित है। उस मण्डप के मध्य में आनन्दवन से विभूषित चिदानन्दमयी वेदिका है। उसके ऊपर निरतिशयानन्दस्वरूप तेजोराशि प्रज्वलित हो रही है। उसके भीतर अष्टाक्षरी पद्म से विभूषित चिन्मय आसन विराजमान है। उस आसनरूप पद्म की

प्रणवरूपी कर्णिका पर चिन्मय सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के मण्डल क्रमश: एक के ऊपर एक प्रज्वलित हैं। वहाँ अखण्ड आनन्दरूप तेजोराशि के भीतर परम मङ्गलाकार अनन्तासन विराजमान है। उसके ऊपर महायन्त्र प्रज्वलित है। निरतिशय ब्रह्मानन्द की परममूर्ति रूप वह महायन्त्र समस्त ब्रह्मतेज की राशि का समष्टिस्वरूप, चित्स्वरूप, निर्मल, परब्रह्मस्वरूप एवं परब्रह्म का परम रहस्यमय कैवल्यरूप है। महायन्त्रमय परम वैकुण्ठ का यह नारायण यन्त्र विजयी होता है' ॥ २१-२९॥

तत्स्वरूपं कथमिति ।
देशिकस्तथेति होवाच । आदौ षट्कोणचक्रम् ।
तन्मध्ये षट्दलपद्मम् । तत्कर्णिकायां प्रणव ॐ इति ।
प्रणवमध्ये नारायणबीजमिति । तत्साध्यगर्भितं मम सर्वाभीष्टसिद्धिं
कुरुकुरु स्वाहेति । तत्पद्मदलेषु विष्णुनृसिंहषडक्षरमन्त्रौ
ॐ नमो विष्णवे ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्ष्मौं फट् ।
तद्दलकपोलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ । रां रामाय नमः । क्लीं
कृष्णाय नमः । षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षरमन्त्रः । सहस्रार हुं
फडिति । षट्कोणकपोलेषु प्रणवयुक्तशिवपञ्चाक्षरमन्त्रः । ॐ नमः
शिवायेति ।

उसका स्वरूप कैसा है?' शिष्यके इस प्रकार पूछनेपर गुरु 'वह ऐसा है' कहकर (यन्त्रको स्वरूप) बतलाते हैं-"पहले षट्कोणचक्र बनाना चाहिये। उसके मध्यमें छः दलों का कमल अङ्कित करे। उस कमलकी कर्णिका पर प्रणव (ॐ) लिखे। प्रणव के बीच में नारायण का बीज-मन्त्र (अं) लिखे। वह बीज-मन्त्र साध्य गर्भित होना चाहिये।

अर्थात् उसके साथ जिस उद्देश्य से यन्त्र-पूजा करनी हो, उसका सूचक 'मम सर्वाभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' यह वाक्य लिखना चाहिये। कमल के दलों पर विष्णु एवं नृसिंह के षडक्षर मन्त्रों को लिखना चाहिये। विष्णुषडक्षर-मन्त्र 'ॐ विष्णवे नमः' और नृसिंह-षडक्षर मन्त्र 'ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्षरौं फट्' है। दल-कपोलों में दो दलों के मध्य में श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के षडक्षर मन्त्रों को लिखे। राम-षडक्षर-मन्त्र 'रां रामाय नमः' और कृष्ण षडक्षर मन्त्र 'क्लीं कृष्णाय नमः' है। षट्कोणचक्र के छः कोणों में 'सहस्रार हुं फट्' यह सुदर्शन-षडक्षर-मन्त्र लिखे। छहों कोण-कपोलों में (दो कोनों के मध्य अर्थात् रेखाओं के सामने बाहर) 'ॐ नमः शिवाय' यह प्रणवयुक्त शिव-पञ्चाक्षर मन्त्र लिखे" ॥ ३०॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्बहिरष्टदलपद्मम् ।
तेषु दलेषु नारायणनृसिंह अष्टाक्षरमन्त्रौ । ॐ नमो नारायणाय ।
जयजय नरसिंह । तद्दलसन्धिषु रामकृष्णश्रीकराष्टाक्षरमन्त्राः ।
ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा । क्लीं दामोदराय नमः ।
उत्तिष्ठ श्रीकरस्वाहा ।

"उस षट्कोणचक्र के बाहर प्रणव को इस प्रकार माला की भाँति लिखे कि वृत्त बन जाय। वृत्त के बाहर अष्टदल कमल बनाये। उसके दलों पर 'ॐ नमो नारायणाय' यह नारायण-अष्टाक्षर-मन्त्र और 'जय जय नरसिंह' यह नृसिंह-अष्टाक्षर-मन्त्र लिखे। दलों के बीच के स्थानों पर राम, कृष्ण तथा श्रीकर के अष्टाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं-'ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा' 'क्लीं दामोदराय नमः', 'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा' ॥ ३१॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् ।
वृत्तद्बहिर्नवदलपद्मम् । तेषु दलेषु रामकृष्ण-
हयग्रीवनवाक्षरमन्त्राः । ॐ रामचन्द्राय नमॐ ।
क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीम् । ह्लौं हयग्रीवाय नमो
ह्लौं । तद्दलकपोलेषु दक्षिणामूर्तिरीश्वरम् ।

"उस (अष्टदल कमल)-के बाहर प्रणव के माला की तरह लिखते हुए वृत्ताकार बना दे। वृत्त के बाहर नौ दलों का कमल बनाये। कमलके दलों में (क्रमशः) राम, कृष्ण एवं हयग्रीव के नवाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं-'ॐ रामचन्द्राय नमः ॐ', 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं', 'सौं हयग्रीवाय नमः सौं।' दलों के मध्यमें ॐ दक्षिणामूर्तिरीश्वरोम्' यह दक्षिणामूर्ति-नवाक्षर-मन्त्र लिखे" ॥ ३२ ॥

तद्बहिर्नारायणबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्तद्बहिर्दशदलपद्मम् ।
तेषु दलेषु रामकृष्णदशाक्षरमन्त्रौ । हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा ।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा । तद्दलसन्धिषु नृसिंहमालामन्त्रः । ॐ नमो
भगवते श्रीमहानृसिंहाय करालदंष्ट्रवदनाय मम विघ्नात्पचपच स्वाहा।
तद्बहिर्नृसिंहैकाक्षरयुक्तं वृत्तम् ।

"उसके बाहर नारायण-बीज (अं)-से युक्त अर्थात् अं अं लिखते हुए वृत्त बनाये। वृत्त से बाहर दस दलों का कमल बनाये। उन दलों पर राम तथा कृष्णके दशाक्षर-मन्त्र लिखे। वे मन्त्र ये हैं-'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा', 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'। दलोंके

संधिस्थानों में 'ॐ नमो भगवते श्रीमहानृसिंहाय कालदंष्ट्रवदनाय मम विघ्न् पच पच स्वाहा' यह नृसिंहमाला-मन्त्र लिखे" ॥ ३३ ॥

क्ष्मौं इत्येकाक्षरम् ।
वृत्ताद्बहिर्द्वादशदलपद्मम् । तेषु दलेषु नारायण-
वासुदेवद्वादशाक्षरमन्त्रौ । ॐ नमो भगवते नारायणाय ।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । तद्दलकपोलेषु महाविष्णु-
रामकृष्णद्वादशाक्षरमन्त्राश्च । ॐ नमो भगवते
महाविष्णवे । ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा ।
श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः ।

"दस दल कमल के बाहर नृसिंह के एकाक्षर-मन्त्र 'क्षरौं' के द्वारा वृत्त बनाये। वृत्त के बाहर बारह दलों का कमल बनाये। दलोंपर नारायण तथा वासुदेव के द्वादशाक्षरमन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं-'ॐ नमो भगवते नारायणाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' दलों के कपोलों में क्रमशः महाविष्णु, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के द्वादशाक्षर मन्त्र लिखे। मन्त्र इस प्रकार हैं-'ॐ नमो भगवते महाविष्णवे', 'ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा', 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः ॥ ३४॥

तद्बहिर्जगन्मोहन बीजयुक्तं वृत्तं क्लीं इति ।
वृत्तद्बहिश्चतुर्दशदलपद्मम् । तेषु दलेषु
लक्ष्मीनारायणहयग्रीवगोपालदधिवामन-
मन्त्राश्च । ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः ।
ॐ नमः सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय क्लीं कृष्णाय
गोपालचूडामणये स्वाहा । ॐ नमो भगवते दधिवामनाय ॐ ।

तद्दलसन्धिष्वन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रः । ह्रीं पद्मावत्यन्नपूर्णे माहेश्वरी स्वाहा ।

उसके बाहर जगन्मोहन बीज-मन्त्र 'क्लीम्' से वृत्त बनाये। वृत्त से बाहर चौदह दलों का कमल बनाये। उन दलों पर क्रमशः लक्ष्मीनारायण, हयग्रीव, गोपाल तथा दधिवामन के मन्त्रों को लिखे। मन्त्र ये हैं-'ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः', 'ॐ नमः सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय', 'क्लीं कृष्णाय गोपालचूडामणये स्वाहा', 'ॐ नमो भगवते दधिवामनाय ॐ।' दो दलों के सन्धि-स्थानों पर 'ह्रीं पद्मावत्यन्नपूर्णे माहेश्वरि स्वाहा' यह अन्नपूर्णेश्वरी-मन्त्र लिखे"॥ ३५॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् ।
वृत्ताद्बहिः षोडशदलपद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्ण-
सुदर्शनषोडशाक्षरमन्त्रौ च । ॐ नमो भगवते
रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय
हुं फट् । तद्दलसन्धिषु स्वराः सुदर्शनमालामन्त्राश्च ।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ।
सुदर्शनमहाचक्राय दीप्तरूपाय सर्वतो
मां रक्षरक्ष सहस्रार हुं फट् स्वाहा ।

उसके बाहर केवल प्रणव से एक वृत्त बनाये। वृत्त से बाहर सोलह, दलों का कमल बनाये। उसके दलों पर श्रीकृष्ण तथा सुदर्शन के षोडशाक्षर-मन्त्रों को लिखे। मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं-'ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा', 'ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्।' उसके दलों के सन्धि-भागों में सब स्वर तथा सुदर्शन-माला-

मन्त्र लिखे। पूरा मन्त्र यह है 'सुदर्शनमहाचक्राय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहस्रार हुं फट् स्वाहा।' पहले एक-एक स्वर लिखा जायगा, फिर स्वरोंके नीचे क्रमशः प्रत्येक दलपर मन्त्रके दोदो अक्षर जैसे प्रथम दलपर 'सुद' दूसरे पर 'र्शन' इस प्रकार लिखे जायँगे ॥ ३६॥

तद्बहिर्वराहबीजयुक्तं वृत्तम् । तद्धुमिति ।
वृत्तद्बहिरष्टादशदलपद्मम् ।
तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टादशाक्षरमन्त्रौ ।
क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।
ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा ।
तद्दलकपोलेषु गरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रो गरुडमालामन्त्रश्च ।
क्षिप ॐ स्वाहा । ॐ नमः पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षः-
कृत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा ।

"उसके बाहर वराह-बीज से युक्त वृत्त रहेगा। वह बीज 'हुँ' है। वृत्त से बाहर अठारह दलों का कमल बनाये। उन दलों पर श्रीकृष्ण तथा वामन के अष्टादशाक्षरमन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं-'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा', 'ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा।' दलों के सन्धि-स्थानों पर गरुड-पञ्चाक्षर-मन्त्र और गरुड-माला-मन्त्र लिखे । मन्त्र क्रमश: ये हैं-'क्षिप ॐ स्वाहा', 'ॐ नमः पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षःकृत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा।' इसमें पहले दल पर 'क्षिप', दूसरे पर 'ॐ' तीसरे पर 'स्वाहा', चौथे पर 'ॐ नमः', पाँचवें पर 'पक्षि', छठे पर

'राजाय' और शेष पर शेष मन्त्र भागके दो-दो अक्षर लिखे जायँगे ॥३७॥

तद्बहिर्मायाबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्तद्बहिः पुनरष्टदलपद्मम् ।
तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टाक्षरमन्त्रौ । ॐ नमो दामोदराय । ॐ
वामनाय नमः ॐ । तद्दलकपोलेषु
नीलकण्ठत्र्यक्षरीगरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रौ च ।
प्रें रीं ठः । नमोऽण्डजाय ।

"उसके बाहर 'ह्रीं' इस माया-बीज से वृत्त बनाये। उसके बाहर फिर अष्टदल कमल बनाये। उन दलों पर श्रीकृष्ण तथा वामन के अष्टाक्षर-मन्त्र'ॐ नमो दामोदराय' और 'ॐ वामनाय नमः ॐ' इनको क्रमशः लिखे। दलों के सन्धि-स्थलों पर नीलकण्ठ के त्र्यक्षर तथा गरुड के पञ्चाक्षर मन्त्रों को पहले तीन दलों पर पहले का एक-एक अक्षर, फिर शेष पर दूसरे का एक-एक अक्षर इस प्रकार लिखें 'प्रे रीं ठः, नमोऽण्डजाय"॥ ३८॥

तद्बहिर्मन्मथबीजयुक्तं वृत्तम् ।
वृत्तद्बहिश्चतुर्विंशतिदलपद्मम् । तेषु दलेषु शरणागत-
नारायणमन्त्रौ नारायणहयग्रीवगायत्री मन्त्रौ च ।
श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः ।
नारायाणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि ।
तन्नो हंसः प्रचोदयात् । तद्दलकपोलेषु नृसिंहसुदर्शनगायत्रीमन्त्राश्च ।
वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् ।

सुदर्शनाय विद्महे हेतिराजाय धीमहि । तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् ।
तत्सवितुर्वरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

"उसके बाहर कामदेव के बीज-मन्त्र क्लीं से वृत्त बनाये। वृत्त से बाहर चौबीस दलों का कमल निर्मित करे। उन दलोंपर शरणागत-मन्त्र एवं नारायण-मन्त्र (पहले एक-एक अक्षर के क्रम से शरणागत-मन्त्र और शेष दलों पर नारायण-मन्त्रके अक्षर) तथा नारायण एवं हयग्रीवके गायत्री मन्त्र क्रमशः लिखे। मन्त्र इस प्रकार हैं- 'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये', 'श्रीमते नारायणाय नमः', 'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' 'वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।' उसके दलों के सन्धिभागों में नृसिंह-गायत्री, सुदर्शन-गायत्री तथा ब्रह्मगायत्रीमन्त्र (क्रमशः) लिखे। मन्त्र ये हैं—'वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नः सिंहः प्रचोदयात्', 'सुदर्शनाय विद्महे हेतिराजाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् 'तत्सवितुर्वरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३९॥

तद्बहिर्हयग्रीवैकाक्षरयुक्तं वृत्तं ह्लोह्सौमिति ।
वृत्ताद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलपद्मम् ।
तेषु दलेषु नृसिंहहयग्रीवानुष्टुभमन्त्रौ उग्रं
वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।
ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे ।
प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः ।
तद्दलकपोलेषु रामकृष्णानुष्टुभमन्त्रौ ।

रामभद्र महेश्वास रघुवीर नृपोत्तम ।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च मे ।
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ।
तद्बहिः प्रणवसम्पुटिताग्निबीजयुक्तं वृत्तम् ।
ॐ रमोमिति । वृत्तद्बहिः षट्त्रिंशद्दलपद्मम् ।
तेषु दलेषु हयग्रीवषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रः
पुनरष्टत्रिंशदक्षर मन्त्रश्च । हंसः ।
विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे ।
तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे । सोऽहम् ।
ह्रौं ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववागीश्वरेश्वराय
सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा ।
तद्दलकपोलेषु प्रणवादिनमोन्ताश्च तुर्थ्यन्ताः
केशवादिचतुर्विंशतिमन्त्राश्च ।
अवशिष्टद्वादशस्थानेषु रामकृष्णगायत्रीद्वयवर्णचतुष्टयमेकैकस्थले ।
ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः ।
ॐ माधवाय नमः । ॐ गोविन्दाय नमः ।
ॐ विष्णवे नमः । ॐ मधुसूदनाय नमः ।
ॐ त्रिविक्रमाय नमः । ॐ वामनाय नमः ।
ॐ श्रीधराय नमः । ॐ हृषीकेशाय नमः ।
ॐ पद्मनाभाय नमः । ॐ दामोदराय नमः ।
ॐ सङ्कर्षणाय नमः । ॐ वासुदेवाय नमः ।
ॐ प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अनिरुद्धाय नमः ।
ॐ पुरुषोत्तमाय नमः । ॐ अधोक्षजाय नमः ।
ॐ नारसिंहाय नमः । ॐ अच्युताय नमः ।
ॐ जनार्दनाय नमः । ॐ उपेन्द्राय नमः ।
ॐ हरये नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः ।

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि ।
तन्नो रामः प्रचोदयात् ।
दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ।
तद्बहिः प्रणवसम्पुटिताङ्कुशबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ क्रोमिति ।
तद्बहिः पुनर्वृत्तं तन्मध्ये द्वादशकुक्षिस्थानानि सान्तरालानि ।
तेषु कौस्तुभवनमालाश्रीवत्ससुदर्शनगरुडपद्म-
ध्वजानन्तशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकमन्त्राः प्रणवादि-
नमओन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण ।
ॐ कौस्तुभाय नमः । ॐ वनमालाय नमः ।
ॐ श्रीवत्साय नमः । ॐ सुदर्शनाय नमः ।
ॐ गरुडाय नमः । ॐ पद्माय नमः ।
ॐ ध्वजाय नमः । ॐ अनन्ताय नमः ।
ॐ शार्ङ्गाय नमः । ॐ गदायै नमः ।
ॐ शङ्खाय नमः । ॐ नन्दकाय नमः ।
तदन्तरालेषु----ॐ विश्वक्सेनाय नमः ।
ॐआचक्राय स्वाहा । ॐ विचक्राय स्वाहा ।
ॐ सुचक्राय स्वाहा । ॐ धीचक्राय स्वाहा ।
ॐ संचक्राय स्वाहा । ॐ ज्वालचक्राय स्वाहा ।
ॐ क्रुद्धोल्काय स्वाहा । ॐ महोल्काय स्वाहा ।
ॐ वीर्योल्काय स्वाहा । ॐ द्युल्काय स्वाहा ।
ॐ सहस्रोल्काय स्वाहा । इति प्रणवादि मन्त्राः ।

"उसके बाहर 'सौं' इस हयग्रीव के एकाक्षर बीज-मन्त्र से वृत्त बनाये। उसके बाहर बत्तीस दलों का कमल बनाये। उसके दलों पर (क्रमशः) नृसिंह एवं हयग्रीव के अनुष्टुप् मन्त्रों को लिखे। यह मन्त्र हैं –

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे।
प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः॥

दलों के सन्धि-भागों में (क्रमशः) राम तथा कृष्ण के अनुष्टुप्-मन्त्र लिखे-

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥

उसके बाहर प्रणव से सम्पुटित अग्निबीज (ॐ रमोम्)-से वृत्त बनाये। वृत्त से बाहर छत्तीस दलों का कमल बनाये। उसके दलोंपर हयग्रीव का छत्तीस अक्षरोंवाला और फिर (उसके नीचे) अड़तीस अक्षरों वाला मन्त्र लिखे।" मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं-

हंसः' विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे।
तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे 'सोऽहम्॥
'हसौं ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववागीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा।'

इस मन्त्रमें ३८ अक्षर होनेसे पहलेके दो 'सौमोम्' प्रथम दलपर तथा 'नमो' दूसरे दलपर और शेषपर एक एक अक्षर लिखे जायँगे। दलोंके सन्धि-स्थलों में आदिमें 'ॐ' तथा अन्तमें 'नमः' लगाकर केशवादि के चतुर्थी विभक्ति युक्त चौबीस नाम मन्त्र प्रत्येक दल पर पूरा एक मन्त्र तथा शेष बारह दलों पर राम-कृष्ण के दोनों गायत्री मन्त्रों के चार-चार अक्षर एक-एक स्थल पर पहली गायत्री के चार-चार अक्षरके बाद दूसरीके चार-चार अक्षर क्रम से लिखे। मन्त्र ये हैं-" ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ दामोदराय नमः, ॐ संकर्षणाय नमः, ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः, ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नारसिंहाय नमः, ॐ अच्युताय नमः, ॐ जनार्दनाय नमः, ॐ उपेन्द्राय नमः, ॐ हरये नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः। श्रीरामगायत्री- दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्। श्रीकृष्णगायत्री- दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।

उसके बाहर प्रणवसे सम्पुटित अंकुश-बीज 'ॐ को ॐ' मन्त्र से वृत्त बनाये। उस वृत्त से बाहर कुछ अन्तर छोड़कर उसी मन्त्र से फिर वृत्त बनाये। दोनों वृत्तों के मध्य में बारह कोष्ठ वृत्त बनाये, जिनके मध्य में अन्तर हो। उन कोष्ठों वृत्तों में आदि में प्रणव तथा अन्त में 'नमः' लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, सुदर्शन,

गरुड, पद्म, ध्वज, अनन्त, शाङ्ग, गदा, शंख एवं नन्दक के मन्त्र लिखे। मन्त्र इस प्रकार होंगे ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ सुदर्शनाय नमः, ॐ गरुडाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ ध्वजाय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ शाङ्गय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ नन्दकाय नमः। "कोष्ठोंके अन्तरालों में आदिमें प्रणवयुक्त ये मन्त्र लिखे" ॐ विष्वक्सेनाय नमः, ॐ आचक्राय स्वाहा, ॐ विचक्राय स्वाहा, ॐ सुचक्राय स्वाहा, ॐ धीचक्राय स्वाहा, ॐ संचक्राय स्वाहा, ॐ ज्वालाचक्राय स्वाहा, ॐ क्रुद्धोल्काय स्वाहा, ॐ महोल्काय स्वाहा, ॐ वीर्योल्काय स्वाहा, ॐ विद्योल्काय स्वाहा, ॐ सहस्रोल्काय स्वाहा॥४०-४२॥

तद्बहिः प्रणवसम्पुटितगरुडपञ्चाक्षरयुक्तं वृत्तम् ।
ॐ क्षिप ॐ स्वाहाम् । ॐ तच्च द्वादशवज्रैः
सान्तरालैरलङ्कृतम् । तेषु वज्रेषु
ॐ पद्मनिधये नमः । ॐ महापद्मनिधये नमः ।
ॐ गरुडनिधये नमः । शङ्खनिधये नमः ।
ॐ मकरनिधये नमः । ॐ कच्छपनिधये नमः ।
ॐ विद्यानिधये नमः । ॐ परमानन्दनिधये नमः ।
ॐ मोक्षनिधये नमः । ॐ लक्ष्मीनिधये नमः ।
ॐ ब्रह्मनिधये नमः । ॐ श्रीमुकुन्दनिधये नमः ।
ॐ वैकुण्ठनिधये नमः । तत्सन्धिस्थानेषु----
ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः । ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः ।
ॐ आनन्दकल्पकतरवे नमः । ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः ।
ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः । ॐ अमृतकल्पकतरवे नमः ।
ॐ बोधकल्पकतरवे नमः । ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः ।

ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः । ॐ वेदकल्पकतरवे नमः ।
ॐ योगकल्पकतरवे नमः । ॐ यज्ञकल्पकतरवे नमः ।
ॐ पद्मकल्पकतरवे नमः । तच्च शिवगायत्रीपरब्रह्ममन्त्राणां
वर्णैर्वृत्ताकारेण संवेष्ट्य । तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । श्रिअमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोस्तु ते । तद्बहिः
प्रणवसम्पुटितश्रीबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ श्रीमोमिति ।
वृत्ताद्बहिश्चत्वारिंशद्दलपद्मम् । तेषु दलेषु
व्याहृतिशिरःसम्पुटितवेदगायत्रीपादचतुष्टयसूर्याष्टाक्षरमन्त्रौ ।
ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ सुवः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ
सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् । ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ।
ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ परोरजसे सावदोम् ।
ॐ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ।
ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः । तद्दलसन्धिषु
प्रणवश्रीबीजसम्पुटितनारायणबीजं सर्वत्र ।
ॐ श्रीमं श्रीमोम् ।

"उसके बाहर प्रणव से सम्पुटित गरुडपञ्चाक्षर 'ॐ क्षिप ॐ स्वाहा ॐ'-मन्त्र से वृत्त बनाये। दोनों वृत्तों के मध्य भाग में अन्तर छोड़कर बारह वज्र बनाये। उन वज्रों के कोणों में ये मन्त्र लिखे-" ॐ पद्मनिधये नमः, ॐ महापद्मनिधये नमः, ॐ गरुडनिधये नमः, ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ मकरनिधये नमः, ॐ कच्छपनिधये नमः, ॐ विद्यानिधये नमः, ॐ परमानन्दनिधये नमः, ॐ मोक्षनिधये नमः, ॐ लक्ष्मीनिधये नमः, ॐ ब्रह्मनिधये नमः, ॐ मुकुन्दनिधये नमः। 'उन वज्रों के बीच के भागों में ये मन्त्र लिखे ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः, ॐ आनन्दकल्पकतरवे नमः, ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः, ॐ

मुक्तिकल्पकतरवे नमः, ॐ अमृतकल्पकतरवे नमः, ॐ बोधकल्पकतरवे नमः, ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः, ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः, ॐ वेदकल्पकतरवे नमः, ॐ योगकल्पकतरवे नमः, ॐ यज्ञकल्पकतरवे नमः, ॐ पद्मकल्पकतरवे नमः। इस वृत्त को शिवगायत्री तथा परब्रह्म-मन्त्र के अक्षरों द्वारा वृत्तरूप से घेरे। अर्थात् वृत्त के बाहर पहले शिवगायत्री इस प्रकार लिखे कि वृत्त के चारों ओर गोलाई में आधी दूर के लगभग वह लिखी जाय और आगे 'परब्रह्म मन्त्र लिखकर उस गोले को पूरा कर दे। मन्त्र ये हैं शिव-गायत्री- तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्। परब्रह्ममन्त्र- श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः। नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते॥ "उसके बाहर प्रणव से सम्पुटितं श्री बीज अर्थात् 'ॐ श्रीमोम्' मन्त्र से वृत्त बनाये। वृत्त के बाहर चालीस दलों का कमल बनाये। उसके दलों पर व्याहृति एवं शिरोभाग से सम्पुटित वेद-गायत्री के चारों पाद तथा सूर्याष्टाक्षर-मन्त्र लिखे।" मन्त्र इस प्रकार होंगे 'ॐ भूः ॐ भुवः ॐ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ परो रजसे सावदोम् ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्।' 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः।' "दलों के सन्धि-स्थलों पर सब कहीं प्रणव और श्रीबीज से सम्पुटित नारायण-बीज अर्थात् 'ॐ श्रीमं श्रीमोम्' यह मन्त्र लिखे" ॥ ४३-४४॥

तद्बहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम् ।
चक्रान्तश्चक्षुर्दिक्षु हंसःसोहम्मन्त्रौ प्रणवसम्पुटिता
नारायणास्त्रमन्त्राश्च । ॐ हंसः सोहम् ।

ॐ नमो नारायणाय हुं फट् ।

"उसके बाहर आठ शूलों से अङ्कित भू-चक्र बनाये। चक्र के भीतर चारों दिशाओं में प्रणव से सम्पुटित 'हंसः सोऽहम्' मन्त्र और नारायणास्त्र-मन्त्र लिखे। पूरा मन्त्र यह है-'ॐ हंसः सोऽहमोम्' 'ॐ नमो नारायणाय हुं फट् ॥ ४५ ॥

तद्बहिः प्रणवमालासंयुक्तं
वृत्तम् । वृत्ताद्बहिः पञ्चाशद्दलपद्मम् ।
तेषु दलेषु मातृका पञ्चाशदक्षरमाला लकारवर्ज्या ।
तद्दलसन्धिषु प्रणवश्रीबीजसम्पुटितरामकृष्णमालामन्त्रौ ।
ॐ श्रीमों नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय
मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः ।
श्रीमों नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय
निर्गलच्छेदनाय सर्वलोकाधिपतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे
कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम् ।

"उसके बाहर प्रणव-माला से युक्त वृत्त बनाये। वृत्त के बाहर पचास दलों का कमल बनाये। उन दलों में 'ळ' को छोड़कर मातृका के सभी शेष पचास अक्षर (अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लै लै ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष) लिखे। उसके दलों की सन्धियों में प्रणव तथा श्रीबीज से सम्पुटित राम एवं कृष्ण के माला-मन्त्र क्रमशः ऊपर-नीचे लिखे। मन्त्र इस प्रकार होंगे (राममाला-मन्त्र-) 'ॐ श्रीमों नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय

मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः श्रीमोम्'। श्रीकृष्णमाला-मन्त्र- 'ॐ श्रीमों नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय निगलच्छेदनाय सर्वलोकाधिपतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम्॥४६॥

तद्बहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम् ।
तेषु प्रणवसम्पुटितमहानीलकण्ठमन्त्रवर्णानि ।
आऊम्मों नमो नीलकण्ठाय । ॐ शूलाग्रेषु लोकपालमन्त्राः
प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । ॐ इन्द्राय नमः । ॐ अग्नये
नमः । ॐ यमाय नमः । ॐ निरृतये नमः । ॐ वरुणाय नमः । ॐ
वायवे नमः । ॐ सोमाय नमः । ॐ ईशानाय नमः ।

उसके बाहर अष्ट शूलों से अङ्कित एक भूचक्र और बनाये। उन शूलों में प्रणवसम्पुटित महानील कण्ठमन्त्र के अक्षर अर्थात् 'ॐ ॐ नमो नीलकण्ठाय ॐ लिखे। शूलों के अग्रभाग में आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त लोकपालों के मन्त्र इस प्रकार क्रमशः लिखे ओमिन्द्राय नमः, ओमग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ओमीशानाय नमः॥४७॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तत्रयम् । तद्बहिर्भूपुरचतुष्टयं चतुर्द्वारयुतं
चक्रकोणचतुष्टयमहावज्रविभूषितं तेषु वज्रेषु
प्रणवश्रीबीजसम्पुटितामृतबीजद्वयम् । ॐ श्रीं ठं वं श्रीमोमिति ।
बहिर्भूपुरवीथ्याम् ॐ आधारशक्त्यै नमः । ॐ मूलप्रकृत्यै नमः ।

ॐ आदिकूर्माय नमः । ॐ अनन्ताय नमः । ॐ पृथिव्यै नमः ।
मध्यभूपुरवीथ्याम् ॐ क्षीरसमुद्राय नमः । ॐ रत्नद्वीपाय नमः ।
ॐ मणिमण्डपाय नमः । ॐ श्वेतच्छत्राय नमः । ॐ कल्पकवृक्षाय
नमः । ॐ रत्नसिंहासनाय नमः । प्रथमभूपुरवीथ्यामों
धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यसत्वरजस्तमोमाया-
विद्यानन्तपद्माः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण ।
अन्तवृत्तवीथ्यामोमनुग्रहायै नमः । ॐ नमो भगवते
विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोग-
योगपीठात्मने नमः । वृत्तवकाशेषु बीजं प्राणं
च शक्तिं च दृष्टिं वश्यादिकं तथा ।
मन्त्रयन्त्राख्यगायत्रीप्राणस्थापनमेव च ।
भूतदिक्पालबीजानि यन्त्रस्याङ्गानि वै दश ।
मूलमन्त्रमालामन्त्रकवचदिग्बन्धनमन्त्राश्च ।
एवंविधमेतद्यन्त्रं महामन्त्रमयं योगधीरान्तैः
परमन्त्रैरलङ्कृतं षोडशोपचारैरभ्यर्चितं
जपहोमादिना साधितमेतद्यन्त्रं शुद्धब्रह्मतेजोमयं
सर्वाभयङ्करं समस्तदुरितक्षयकरं सर्वाभीष्ट-
सम्पादकं सायुज्यमुक्तिप्रदमेतत्परमवैकुण्ठ-
महानारायणयन्त्रं प्रज्वलति ।

"उसके बाहर प्रणव (ॐ)-की माला से युक्त तीन वृत्त बनाये। उसके बाहर चार द्वारोंसे युक्त चार भूपुर बनाये, जिसमें चक्र के चारों कोनों पर महावज्र शोभित हों। उन वज्रों में प्रणव तथा श्रीबीज से सम्पुटित दो अमृत-बीज"ॐ श्रीं वं वं श्रीं ॐ' लिखे। प्रणव-वृत्तों के बाहर सबसे बाहरी भूपुर-वीथी में ये मन्त्र लिखे-'ओमाधारशक्त्यै नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, ओमादिकूर्माय नमः, ओमनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै

नमः।' मध्यभूपुर-मार्गमें ये मन्त्र लिखे'ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ रत्नमण्डपाय नमः, ॐ श्वेतच्छत्राय नमः, ॐ कल्पकवृक्षाय नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः।' प्रथम भूपुर-वीथी में आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर चतुर्थी विभक्ति युक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य, सत्त्व, रजस्, तमस्, माया, अविद्या, अनन्त एवं पद्म के मन्त्र लिखे। इन मन्त्रों के यह रूप होंगे-ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ओमैश्वर्याय नमः, ओमधर्माय नमः, ओमज्ञानाय नमः, ओमवैराग्याय नमः, ओमनैश्वर्याय नमः, ॐ सत्त्वाय नमः, ॐ रजसे नमः, ॐ तमसे नमः, ॐ मायायै नमः, ओमविद्यायै नमः, ओमनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः।

बाहरी वृत्त की वीथी में-विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना-इन सबके चतुर्थ्यन्त नाम आदि में प्रणव और अन्त में 'नमः' लगाकर लिखे ॐ विमलायै नमः, ओमुत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्वयै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ओमीशानायै नमः। भीतरी वृत्त की वीथी में'ओमनुग्रहायै नमः, ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः' लिखे।" 'वृत्तों के बीचके स्थानों में-मन्त्रों के बीज, प्राण, शक्ति, दृष्टि, वश्य आदि, मन्त्र-यन्त्रों के नाम, गायत्री, प्राणप्रतिष्ठा, भूतशुद्धि तथा दिक्पालों के बीज-ये यन्त्र के दस अङ्ग तथा इनके अतिरिक्त मूलमन्त्र, मालामन्त्र, कवच तथा दिग्बन्धन के मन्त्र भी दिये जाते हैं।' इस प्रकारका यह यन्त्र महायन्त्रमय है। योगके द्वारा जिनका अन्तःकरण ज्ञान से आलोकित हो उठा है, ऐसे

पुरुषों द्वारा इसे परम मन्त्रों से अलङ्कृत किया गया है। षोडशोपचारों से पूजे जाने पर तथा जपहवनादि से साधित सिद्ध होने पर यह यन्त्र शुद्ध ब्रह्मतेजोमय, सब प्रकार के भयों से छुड़ानेवाला, समस्त पापों का नाशक, सभी अभीष्टों को देनेवाला तथा सायुज्य मुक्ति देनेवाला है। यह परमवैकुण्ठ-महानारायण-यन्त्र प्रकाशमान है॥ ४८-४९ ॥

तस्योपरि च निरतिशयानन्दतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं
वाचामगोचरानन्दतेजोराश्याकारं चित्सारविभूतानन्दविग्रहं
बोधानन्दस्वरूपं निरतिशयसौन्दर्यपारावारं तुरीयस्वरूपं
तुरीयातीतं चाद्वैतपरमानन्दनिरन्तरातितुरीयनिरतिशय-
सौन्दर्यानन्दपारावारं लावण्यवाहिनीकल्लोलतटिद्भासुरं
दिव्यमङ्गलविग्रहं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैरुपसेव्यमानं
चिदानन्दमयैरनन्तकोटिरविप्रकाशैरनन्तभूषणैरलङ्कृतं
सुदर्शनपाञ्चजन्यपद्मगदासिशार्ङ्गमुसलपरिघाद्यै-
श्चिन्मयैरनेकायुधगणैर्मूर्तिमद्भिः सुसेवितम् ।
बाह्यवृत्तवीथ्यां विमलोत्कर्षिणी ज्ञान क्रिया योग प्रह्वी
सत्येशाना प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण ।
श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाङ्कितवक्षसं ब्रह्मकल्पवनामृत-
पुष्पवृष्टिभिः सन्ततमानन्दं ब्रह्मानन्दरसनिर्भरै-
रसंख्यैरतिमङ्गलं शेषायुतफणाजालविपुलच्छत्रशोभितं
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहं तदङ्गकान्तिनिर्झरैस्ततं
निरतिशयब्रह्मगन्धस्वरूपं निरतिशयानन्दब्रह्मगन्ध-
विशेषकारमनन्तब्रह्मगन्धाकारसमष्टिविशेषमन्तानन्द-
तुलसीमाल्यैरभिनवं चिदानन्दमयानन्तपुष्पमाल्यैर्विराजमानं
तेजःप्रवाहतरङ्गतत्परम्पराभिर्ज्वलन्तं निरतिशयानन्दं
कान्तिविशेषावर्तैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तं बोधानन्दमयानन्त-

धूपदीपावलिनिरतिशोभितं निरतिशयानन्दचामरविशेषैः
परिसेवितं निरन्तरनिरुपमनिरतिशयोत्कटज्ञानानन्दानन्तगुच्छ-
फलैरलङ्कृतं चिन्मयानन्ददिव्यविमानच्छत्रध्वजराजिभि-
र्विराजमानं परममङ्गलानन्तदिव्यतेजोभिर्ज्वलन्तमनिशं
वाचामगोचरमनन्ततेजोराश्यन्तर्गतमर्धमात्रात्मकं
तुर्यं ध्वन्यात्मकं तुरीयातीतमवाच्यं नादबिन्दुकलाध्यात्म-
स्वरूपं चेत्याद्यनन्ताकारेणावस्थितं निर्गुणं निष्क्रियं
निर्मलं निरवद्यं निरञ्जनं निराकारं निराश्रयं निरतिशयाद्वैत-
परमानन्दलक्षणमादिनारायणं ध्यायेदित्युपनिषत् ॥

'उस यन्त्र के ऊपर भी आदिनारायण का ध्यान करे। वे निरतिशय आनन्दमयी तेजोराशि के भीतर भलीभाँति विराजमान हैं। शब्दातीत आनन्दमय तेजोराशि स्वरूप, चैतन्य (ज्ञान) के सार से आविर्भूत आनन्दमय विग्रहयुक्त, बोधानन्दस्वरूप, निरतिशय सौन्दर्यसिन्धु, तुरीयस्वरूप, तुरीयातीत तथा अद्वैत परमानन्दमय हैं। निरन्तर तुरीयातीत निरतिशय सौन्दर्य एवं आनन्द के पारावार हैं, लावण्यसरिता की लहरोंसे उल्लसित तथा विद्युत जैसी कान्ति से प्रकाशित हैं, उनका विग्रह दिव्य एवं मङ्गलमय है। वे मूर्तिधारी परम मङ्गलों से सेवित हैं। चिदानन्दमय अनन्तकोटि सूर्यों के समान तेजोमय प्रकाशवाले अनन्त भूषणों से अलंकृत हैं। सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पद्म, कौमोद की गदा, नन्दक खड्ग, शार्ङ्गधनुष, मुसल, परिघ आदि चिन्मय अनेकों मूर्तिमान् आयुधों से सुसेवित हैं। श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमाला से उनका वक्षःस्थल अंकित (शोभित) है। ब्रह्मरूप कल्पवन के अमृतमय पुष्पों की वर्षासे निरन्तर आनन्दस्वरूप हैं। ब्रह्मानन्दमय रस के असंख्य झरनों से अत्यन्त

मङ्गलरूप हैं। शेषनाग के दस सहस्र फणसमूहों के विशाल छत्र से शोभित हैं। उन फणों के मण्डल में स्थित अत्यन्त तेजस्वी मणियों की ज्योति से उनका श्रीविग्रह विशेष देदीप्यमान है तथा शेषनाग की अङ्गकान्ति के निर्झरों से व्याप्त है। वे निरतिशय ब्रह्मगन्ध स्वरूप की निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्ममय गन्ध के विशेष घन स्वरूप हैं। अनन्त ब्रह्मगन्ध-मूर्तियों के समष्टिरूप हैं। अनन्त आनन्दमय तुलसी की मालाओंसे नित्य नूतनरूप हैं। चिदानन्दमय अनन्त पुष्प-मालाओं से सुशोभित हैं। तेजप्रवाह की तरंगों के अविरल प्रवाह से प्रकाशमान हैं। निरतिशय अनन्त कान्ति विशेष के आवर्तो से सर्वदा सब ओर प्रज्वलित हैं। बोधानन्दमय अनन्त-धूप दीपावलियों से अत्यन्त शोभित हैं। निरतिशय आनन्दस्वरूप चँवरों से परिसेवित हैं। निरन्तर निरुपम निरतिशय उत्कट ज्ञानानन्दमय अनन्त फलों के गुच्छों से अलङ्कृत हैं। चिन्मयानन्दरूप दिव्य विमान, छत्र एवं ध्वजसमूहों से विशेष शोभित हैं। परम मङ्गलमय अनन्त दिव्य तेजों से सर्वदा प्रकाशमान हैं। वाणी से अतीत अनन्त तेजोराशि के अन्तर्गत, अर्धमात्रा स्वरूप, तुरीय, अनाहत ध्वनिरूप, तुरीयातीत, अकथनीय तथा नाद-विन्दु-कला एवं अध्यात्म स्वरूप आदि अनन्त रूपोंमें अवस्थित, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्मल, निर्दोष, निरञ्जन, निराकार, दूसरे के आश्रय से हीन, निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप (उन) आदिनारायण का ध्यान करे॥५०॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥

॥ अष्टमोऽध्यायः॥

॥ आठवां अध्याय॥

ततः पितामहः परिपृच्छति भगवन्तं महाविष्णुं
भगवञ्छुद्धाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तव
कथं विरुद्धवैकुण्ठप्रासादप्राकारविमानाद्यनन्तवस्तुभेदः ।

तब पितामह ब्रह्माजी भगवान् महाविष्णु से पूछते हैं-भगवन् ! शुद्ध अद्वैत परमानन्दस्वरूप आप ब्रह्म के (स्वरूप के) विरुद्ध यह पूर्ववर्णित वैकुण्ठ, भवन, प्राचीरें, विमान प्रभृति अनन्त वस्तुरूप भेद कैसे हैं? ॥ १॥

सत्यमेवोक्तमिति भगवान्महाविष्णुः परिहरति । यथा
शुद्धसुवर्णस्य कटकमुकुटाङ्गदादिभेदः । यथा
समुद्रसलिलस्य स्थूलसूक्ष्मतरङ्गफेनबुद्बुअदकरलवण-
पाषाणाद्यनन्तवस्तुभेदः । यथा भूमेः पर्वतवृक्ष-
तृणगुल्मलताद्यनन्तवस्तुभेदः । तथैवाद्वैतपरमानन्द-

लक्षणपरब्रह्मणो मम सर्वाद्वैतमुपपन्नं भवत्येव ।
मत्स्वरूपमेव सर्वं मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते ।

'तुमने ठीक ही कहा' यह कहकर भगवान् महाविष्णु शंका का निवारण करते हैं-'जैसे शुद्ध स्वर्ण के कड़े, मुकुट, बाजूबंद आदि भेद होते हैं, जैसे ये आकार-भेद स्वर्ण की एकता के बाधक नहीं, जैसे समुद्रीय जल के बड़ी-छोटी तरंगे, फेन, बुलबुले, ओले, नमक, बर्फ आदि अनन्त वस्तुरूप भेद हैं जैसे ये भेद जल के एकत्वमें बाधक नहीं, जैसे भूमि के पर्वत, वृक्ष, तिनके, झाड़ियाँ, लता आदि अनन्त वस्तुभेद हैं, जैसे ये भेद भूमि के एकत्व के विरोधी नहीं, वैसे ही अद्वैत परमानन्दस्वरूप मुझ परम ब्रह्म का सब कुछ अद्वैतरूप सिद्ध ही है। सब प्रतीयमान लौकिक-पारलौकिक भेद मेरे स्वरूप ही हैं। मेरे अतिरिक्त एक अणु भी विद्यमान नहीं, मुझसे भिन्न तुच्छतम भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है ॥२॥

पुनः पितामहः परिपृच्छति । भगवन् परमवैकुण्ठ एव परममोक्षः । परममोक्षस्त्वेक एव श्रूयते सर्वत्र । कथमनन्तवैकुण्ठाश्चानन्तानन्दसमुद्रादयश्चानन्त-मूर्तयः सन्तीति ।

पितामह ब्रह्मा फिर पूछते हैं-'भगवन् ! परम वैकुण्ठ ही परम मोक्ष (धाम) है। सर्वत्र (सभी शास्त्रों में) परम मोक्ष एक ही सुनायी पड़ता (वर्णित) है। फिर अनन्त वैकुण्ठ तथा अनन्त आनन्द-समुद्रादि अनन्त मूर्तियाँ किस प्रकार हैं?'॥ ३॥

तथेति होवाच भगवान्महाविष्णुः ।
एकस्मिन्नविद्यापादेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि श्रूयन्ते ।
तस्मिन्नेकस्मिन्नण्डे बहवो लोकाश्च बहवो वैकुण्ठाश्चानन्त-
विभूतयश्च सन्त्येव । सर्वाण्डेष्वानन्तलोकाश्चानन्त-
वैकुण्ठाः सन्तीति सर्वेषां खल्वभिमतम् । पादत्रयेऽपि
किं वक्तव्यं निरतिशयानन्दाविर्भावो मोक्ष इति मोक्षलक्षणं
पादत्रये वर्तते । तस्मात्पादत्रयं परममोक्षः । पादत्रयं
परमवैकुण्ठः । पादत्रयं परमकैवल्यमिति ।
ततः शुद्धचिदानन्दब्रह्मविलासानन्दाश्चानन्तपरमानन्द-
विभूतयश्चानन्तवैकुण्ठाश्चानन्तपरमानन्दसमुद्रादयः
सन्त्येव ।

यह ठीक ही है' कहकर भगवान् महाविष्णु बोले-'एक ही अविद्यापाद में अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के साथ सुने जाते हैं। जैसे अनन्त ब्रह्माण्डभेद होने से अविद्या की एकता में बाधा नहीं आती, वैसे ही एक ही अण्ड ब्रह्माण्ड में बहुत-से लोक, बहुत-से वैकुण्ठ और अनन्त विभूतियाँ भी हैं ही। सभी ब्रह्माण्डों में अनन्त लोक हैं और अनन्त वैकुण्ठ हैं, यह सभी शास्त्रों को निश्चितरूप से मान्य है। जब एक अविद्यापाद की यह स्थिति है तो पादत्रय के सम्बन्ध में भी यही बात है, उसमें कहना क्या है। निरतिशय आनन्दका आविर्भाव मोक्ष है, यह मोक्ष का लक्षण तीनों पादों में है; इसलिये तीनों पाद परम मोक्षधाम हैं। तीनों पाद परम वैकुण्ठ हैं। तीनों पाद परम कैवल्य धाम हैं। वहाँ शुद्ध चिदानन्द ब्रह्म के विलासरूप आनन्द, अनन्त

परमानन्दमय ऐश्वर्य, अनन्त वैकुण्ठ और अनन्त परमानन्द-समुद्रादि हैं ही ॥४॥

उपासकस्ततोऽभ्येत्यैवंविधं नारायणं ध्यात्वा
प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैरभ्यर्च्य
निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणो भूत्वा तदग्रे सावधानेनो-
पविश्याद्वैतयोगमास्थाय सर्वाद्वैतपरमानन्दलक्षणा-
खण्डामिततेजोराश्याकारं विभाव्योपासकः स्वयं शुद्ध-
बोधानन्दमयामृतनिरतिशयानन्दतेजोराश्याकारो भूत्वा
महावाक्यार्थमनुस्मरन् ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि
ब्रह्माहमस्मि योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां
जुहोमि स्वाहा । अहं ब्रह्मेति भावनया यथा परमतेजोमहानदी-
प्रवाहपरमतेजःपारावाए प्रविशति । यथा परमतेजःपारावार-
तरङ्गाः परमतेजःपारावारे प्रविशन्ति । तथैव सच्चिदान-
न्दात्मोपासकः सर्वपरिपूर्णाद्वैतपरमानन्दलक्षणे परब्रह्मणि
नारायणे मयि सच्चिदात्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मीति
प्रविवेश । तत उपासको निस्तरङ्गाद्वैतापारनिरतिशयसच्चिदानन्द
समुद्रो बभूव ।

"उपासक वहाँ सातवें अध्यायमें वर्णित श्रीनारायण के समीप पहुँच कर इस प्रकार के जैसा स्वरूप उनका वर्णित है नारायण का ध्यान करके, उनकी प्रदक्षिणा तथा उन्हें नमस्कार करता है तथा अनेक प्रकारके उपचारों से उनकी अर्चना करके निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप हो जाता है। उनके आगे सावधानी से बैठकर अद्वैतयोग का आश्रय लेता है और सर्वाद्वैत परमानन्दस्वरूप अखण्ड अमित तेजोराशिस्वरूपकी विशेष रूपसे सम्यक् भावना करके

उपासक स्वयं शुद्ध बोधानन्दमय अमृतस्वरूप एवं निरतिशय आनन्दमय तेजोराशिस्वरूप हो जाता है। तब महावाक्यों के अर्थ का बार-बार स्मरण करता हुआ-'ब्रह्म मैं हूँ, मैं ही हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, जो भी मैं हूँ, ब्रह्म ही मैं हूँ, मैं ही मैं हूँ, मैं अहंता भेद-प्रतीति-का हवन करता हूँ-स्वाहा वह भस्म हो जाय, मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार की भावना द्वारा, जैसे परम तेजोरूप महानदी का प्रवाह परम तेजो रूप समुद्र में प्रवेश कर जाय, जैसे परम तेजोमय समुद्र की तरङ्गें उस परम तेजोमय समुद्र में प्रवेश कर जायँ, उसी प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप उपासक सर्वरूप से परिपूर्ण, अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म मुझे, नारायणमें 'मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, मैं अजन्मा हूँ, मैं परिपूर्ण हूँ' इस प्रकार स्वरूपभूत होकर प्रविष्ट हो जाता है। तब उपासक तरंग हीन, अद्वैत, अपार, निरतिशय सच्चिदानन्द-समुद्र हो जाता है ॥५॥

यस्त्वनेन मार्गेण सम्यगाचरति स नारायणो
भवत्यसंशयमेव । अनेन मार्गेण सर्वे मुनयः सिद्धिं गताः ।
असंख्याताः परमयोगिनश्च सिद्धिं गताः ।

'जो इस उपदिष्ट मार्ग के द्वारा भलीभाँति आचरण (उपासना) करता है, वह निश्चय ही नारायण हो जाता है। सभी मुनिगण इसी मार्गसे सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। असंख्यों परम योगी इसी मार्ग से सिद्धि को, परम गति को पहुँचे हैं' ॥ ६ ॥

ततः शिष्यो गुरुं परिपृच्छति । भगवन्त्सालम्ब-
निरालम्बयोगौ कथमिति ब्रूहीति ।

तब उपर्युक्त उपदेश के अनन्तर शिष्य गुरुसे पूछता है-भगवन् ! सालम्ब एवं निरालम्बयोग किस प्रकार के हैं ॥ ७ ॥

सालम्बस्तु समस्तकर्मातिदूरतया करचरणादिमूर्तिविशिष्टं
मण्डलाद्यालम्बनं सालम्बयोगः । निरालम्बस्तु
समस्तनामरूपकर्मातिदूरतया
सर्वकामाद्यन्तःकरणवृत्तिसाक्षितया तदालम्बनशून्यतया
च भावनं निरालम्बयोगः ।

गुरुदेव बतलाते हैं- सालम्बयोग वह है, जिसमें सब प्रकार के कर्मों से दूर रहकर कर-चरण आदि अंगों वाली मूर्तिविशेष अथवा मण्डल ज्योति आदि का ध्यान-उपासनादि के लिये आलम्बन किया जाय; यही सालम्बयोग है। निरालम्बयोग वह है, जिसमें समस्त नाम, रूप, कर्म को अत्यन्त दूर से छोड़कर, समस्त कामनादि अन्त:करण की वृत्तियों के साक्षीरूप से, उस अन्त:करण को किसी भी वृत्ति के आलम्बन से शून्य रहकर भावना की जाय। यही भावनाहीन स्थिति में स्थित होना ही निरालम्बयोग है' ॥ ८ ॥

अथ च निरालम्बयोगाधिकारी कीदृशो भवति ।

'तब तो जब निरालम्बयोग इतना दुरूह है, निरालम्बयोग का अधिकारी किस प्रकार का होता है?'॥९॥

अमानित्वादिलक्षणोपलक्षितो वः पुरुषः
स एव निरालम्बयोगाधिकारी कार्यः कश्चिदस्ति । तस्मात्सर्वेषा-
मधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते । भक्तियोगो
निरुपद्रवः । भक्तियोगान्मुक्तिः । बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव
तत्त्वज्ञानं भवति ।

'जो पुरुष अमानित्व आदि (ज्ञान के) लक्षणों से युक्त हो, उसीको निरालम्बयोग का अधिकारी मानना चाहिये। ऐसा अधिकारी कोई विरला ही है। इसलिये सभी अधिकारी-अनधिकारियों के लिये भक्तियोग ही श्रेष्ठ कहा जाता है। भक्तियोग विघ्न रहित है। भक्तियोग से मुक्ति प्राप्त होती है। भक्तों को बिना परिश्रम के अविलम्ब ही तत्त्वज्ञान हो जाता है ॥ १०-११॥

तत्कथमिति । भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो
मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान्सर्वान्परिपालयति । सर्वाभीष्टा-
न्प्रयच्छति । मोक्षं दापयति । चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि
विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते । कारणेन विना
कार्यं नोदेति । भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते ।
तस्मात्त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय । भक्तिनिष्ठो
भव । भक्तिनिष्ठो भव । भक्त्या सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति ।
भक्त्याऽसाध्यं न किंचिदस्ति ।

'वह अनायास अविलम्ब तत्त्वज्ञान कैसे होता है?' इस शंका के उत्तर में बतलाते हैं-'भक्तवत्सल भगवान् स्वयं ही मोक्ष के सभी विघ्नों से

सभी भक्तिनिष्ठ लोगों भक्तों की रक्षा करते हैं। उनके समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं। मोक्ष दिलवाते हैं। भक्त स्वतः मोक्ष नहीं चाहता। भगवान् उसे अपनी ओर से मोक्ष प्रदान करते हैं, इसी से दिलवाते हैं-बरबस देते हैं, यह कहा गया। विष्णु-भक्ति के बिना ब्रह्मादि समस्त देवताओं का भी करोड़ों कल्पों में भी मोक्ष नहीं होता। क्योंकि कारण के बिना कार्य प्रकट नहीं होता, अतः भक्ति जो कारण है, उस के बिना कार्य ब्रह्मज्ञान कभी उत्पन्न नहीं होता। इसलिये तुम भी समस्त उपायों को छोड़कर भक्ति का आश्रय लो। भक्तिनिष्ठ बनो। भक्तिनिष्ठ बनो। भक्तिके द्वारा सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। भक्तिके द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है' ॥ १२ ॥

एवंविधं गुरूपदेशमाकर्ण्य
सर्वं परमतत्त्वरहस्यमवबुध्य सर्वसंशयान्विधूय
क्षिप्रमेव मोक्षं साधयामीति निश्चित्य ततः शिष्यः समुत्थाय
प्रदक्षिणनमस्कारं कृत्वा गुरुभ्यो गुरुपूजां विधाय
गुर्वनुज्ञया क्रमेण भक्तिनिष्ठो भूत्वा भक्त्यतिशयेन
पक्वं विज्ञानं प्राप्य तस्मादनायासेन शिष्यः क्षिप्रमेव
साक्षान्नारायणो बभूवेत्युपनिषत् ॥

"इस प्रकार गुरु के उपदेश को सुनकर, परम तत्त्व के सभी रहस्यों को जानकर, सम्पूर्ण संशयों को दूर करके 'शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लूंगा' ऐसा निश्चय करके, तब शिष्य उठा। उठकर गुरु की प्रदक्षिणा एवं उन्हें नमस्कार करके, गुरु की पूजा करके, गुरु की ही आज्ञासे उसने क्रमशः भक्तिनिष्ठ होकर परिपक्व भक्ति के आधिक्य से

परिपक्व विज्ञान प्राप्त किया। उस परिपक्व विज्ञान से बिना परिश्रमके ही शिष्य शीघ्र ही साक्षात् नारायणस्वरूप हो गया" ॥ १३ ॥

ततः प्रोवाचत् भगवान् महाविष्णुश्चतुर्मुखमवलोक्य
ब्रह्मन् परमतत्त्वरहस्यं ते सर्वं कथितम् । तत्स्मरण-
मात्रेण मोक्षो भवति । तदनुष्ठानेन सर्वमविदितं विदितं
भवति । यत्स्वरूपज्ञानिनः सर्वमविदितं विदितं भवति । तत्सर्वं
परमरहस्यं कथितम् ।

यह आख्यान सुनाकर तब भगवान् महाविष्णु चतुर्मुख ब्रह्माजी की ओर देखकर बोले-'ब्रह्माजी ! मैंने आपसे परम तत्त्व का समस्त रहस्य कह दिया। उसके स्मरणमात्र से मोक्ष हो जाता है। उसके अनुष्ठान से सम्पूर्ण अज्ञात ज्ञात हो जाता है। जिसके स्वरूप को जान लेनेसे अज्ञात भी ज्ञात हो जाता है, वह सम्पूर्ण परमतत्त्व-रहस्य मैंने बतला दिया' ॥ १४॥

गुरुः क इति । गुरुः साक्षादादिनारायणः
पुरुषः । स आदिनारायणोऽहमेव । तस्मान्मामेकं शरणं
व्रज । मद्भक्तिनिष्ठो भव । मदीयोपासनां कुरु । मामेव
प्राप्स्यसि । मद्व्यतिरिक्तं सर्वं बाधितम् । मद्व्यतिरिक्तमबाधितं
न किंचिदस्ति । निरतिशयानन्दाद्वितीयोऽहमेव ।
सर्वपरिपूर्णोऽहमेव। सर्वाश्रयोऽहमेव ।
वाचामगोचरनिराकारपरब्रह्मस्वरूपोऽहमेव ।
मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते ।

'गुरु कौन है?' ब्रह्माजीके इस प्रश्न के उत्तरमें भगवान् बतलाते हैं- 'गुरु साक्षात् आदिनारायण पुरुष हैं। वह आदिनारायण मैं ही हूँ। इसलिये एकमात्र मेरी शरण में आओ। मेरी भक्ति में निष्ठावान् होओ। मेरी उपासना करो। इस प्रकार मुझे ही प्राप्त करोगे। मेरे अतिरिक्त सब कुछ बाधित अर्थात अतत्त्व है। मुझसे अतिरिक्त अबाधित सत्ता रखनेवाला कुछ भी नहीं है। अद्वितीय निरतिशय आनन्द मैं ही हूँ। सब प्रकार परिपूर्ण मैं ही हूँ, मैं ही सबका आश्रय हूँ। वाणी का अविषय निराकार परब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न अणुमात्र भी नहीं है' ॥ १५ ॥

इत्येवं महाविष्णोः परमिममुपदेशं
लब्ध्वा पितामहः परमानन्दं प्राप । विष्णोः कराभिमर्शनेन
दिव्यज्ञानं प्राप्य पितामहस्ततः समुत्थाय प्रदक्षिणनमस्कारा-
न्विधाय विविधोपचारैर्महाविष्णुं प्रपूज्य प्राञ्जलिर्भूत्वा
विनयेनोपसंगम्य भगवन् भक्तिनिष्ठां मे प्रयच्छ। त्वदभिन्नं
मां परिपालय कृपालय ।

इस प्रकार भगवान् महाविष्णु के इस परम उपदेशका लाभ करके पितामह ब्रह्माजी ने परम आनन्द प्राप्त किया। तदनन्तर भगवान् विष्णु के कर-स्पर्श से दिव्यज्ञान प्राप्त करके पितामह उठे और उठकर उन्होंने प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके विविध उपचारों से भगवान् महाविष्णु की भलीभाँति पूजा की। फिर अञ्जलि बाँधकर, विनयपूर्वक समीप जाकर बोले-'भगवन्! मुझे भक्तिनिष्ठा प्रदान करें ! हे कृपानिधे ! मैं आपसे अभिन्न हूँ, मेरा सब प्रकार पालन करें' ॥ १६-१७॥

तथैव साधुसाध्विति साधुप्रशंसापूर्वकं महाविष्णुः प्रोवाच ।
मदुपासकः सर्वोत्कृष्टः स भवति । मदुपासनया सर्वमङ्गलानि
भवन्ति। मदुपासनया सर्वं जयति । मदुपासकः सर्ववन्द्यो भवति ।
मदीयोपासकस्यासाध्यं न किंचिदस्ति । सर्वे बन्धाः प्रविनश्यन्ति ।
सद्वृत्तमिव सर्वे देवास्तं सेवन्ते । महाश्रेयांसि च सेवन्ते ।
मदुपासकस्तस्मान्निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्म भवति ।

'वही हो, साधु! साधु!' इस प्रकार ब्रह्माजी की भलीभाँति प्रशंसा करते हुए भगवान् महाविष्णु बोले मेरा उपासक सबसे उत्कृष्ट हो जाता है। मेरी उपासना से सब मङ्गल होते हैं। मेरी उपासना से वह सबको विजय कर लेता है। मेरा उपासक सबके द्वारा वन्दनीय होता है। मेरे उपासक के लिये असाध्य कुछ नहीं है। सम्पूर्ण बन्धन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। सदाचारी की जैसे सब लोग सेवा करते हैं, वैसे ही समस्त देवता उसकी सेवा करते हैं। महाश्रेय भी उसकी सेवा करते हैं। मेरा उपासक उस उपासना से निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है। जो भी मुमुक्षु इस मार्गसे सम्यक् आचरण करता है, वह परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है ॥ १८ ॥

यस्तु परमतत्त्व-
रहस्याथर्वणमहानारायणोपनिषदमधीते सर्वेभ्यः
पापेभ्यो मुक्तो भवति । ज्ञानाज्ञानकृतेभ्यः पातकेभ्यो
मुक्तो भवति । महापातकेभ्यः पूतो भवति । रहस्यकृत-
प्रकाशकृतचिरकालात्यन्तकृतेभ्यस्तेभ्यः सर्वेभ्यः
पापेभ्यो मुक्तो भवति । स सकललोकाञ्जयति । स सकलमन्त्र-
जपनिष्ठो भवति । स सकलवेदान्तरहस्याधिगतपरमार्थज्ञो

भवति । स सकलभोगभुग्भवति । स सकलयोगविद्भवति । स सकलजगत्परिपालको भवति । सोऽद्वैतपरमानन्दलक्षणं परब्रह्म भवति ।

'जो कोई इस परमतत्त्व-रहस्य आथर्वण महानारायणोपनिषद्का अध्ययन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। वह जान-बूझकर तथा अनजान में किये पापों से मुक्त हो जाता है। महापापों से पवित्र हो जाता है। छिपाकर किये गये, प्रकटरूप से किये गये, बहुत दिनों तक अधिक रूप में किये गये सभी पापों से मुक्त हो जाता है। वह सभी लोकों को जीत लेता है। उसकी सभी मन्त्रों के जपमें निष्ठा हो जाती है। वह समस्त वेदान्त के रहस्य को प्राप्त करके परमार्थ का ज्ञाता हो जाता है। वह सम्पूर्ण भोगों का भोक्ता हो जाता है। उसे सभी योगों का ज्ञान हो जाता है। वह समस्त जगत का परिपालक हो जाता है। वह अद्वैत-परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है॥ १९ ॥

इदं परमतत्त्वरहस्यं न वाच्यं गुरुभक्तिविहीनाय ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यम् । न तपोविहीनाय नास्तिकाय ।
न दाम्भिकाय मद्भक्तिविहीनाय । मात्सर्याङ्कितनवे न
वाच्यम् । न वाच्यं मदसूयापराय कृतघ्नाय ।

'यह परमतत्त्व-रहस्य गुरुभक्ति विहीन को नहीं बतलाना चाहिये। जो सुनना न चाहता हो, उसे भी नहीं बतलाना चाहिये; न तपस्या विहीन नास्तिक को और न मेरी भगवान की भक्तिसे रहित दाम्भिक को बतलाना चाहिये। मत्सरयुक्त पुरुष को नहीं बतलाना चाहिये। मेरी

निन्दा में लगे भगवान में दोषदृष्टि करनेवाले कृतघ्न को भी नहीं बतलाना चाहिये' ॥ २० ॥

इदं परमरहस्यं यो मद्भक्तेष्वभिधास्यति । मद्भक्तिनिष्ठो भूत्वा मामेव प्राप्स्यति । आवयोर्य इमं संवादमध्येष्यति । स नरो ब्रह्मनिष्ठो भवति । श्रद्धावाननसूयुः श्रुणुयात्पठति वा य इमं संवादमावयोः स पुरुषो मत्सायुज्यमेति ।

जो यह परम रहस्य मेरे भगवान के भक्तको बतलावेगा, वह मेरी भक्ति में निष्ठावान् होकर मुझे भगवान को ही प्राप्त करेगा। जो हम दोनों ब्रह्माजी एवं भगवान् विष्णु के इस संवाद का अध्ययन करेगा, वह मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ हो जायगा। जो श्रद्धावान् तथा असूया (दोष दृष्टि) रहित होकर सुनेगा या हम दोनोंके इस संवादको पढ़ेगा, वह पुरुष मेरे सायुज्य को प्राप्त करेगा' ॥ २१-२३॥

ततो महाविष्णुस्तिरोदधे । ततो ब्रह्मा स्वस्थानं जगामेत्युपनिषत् ॥

इतना कहकर तब महाविष्णु अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी अपने स्थान ब्रह्मलोक को चले गये॥ २४॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः॥

॥ आठवां अध्याय समाप्त ॥

इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली ॥

॥ तृतीय वल्ली समाप्त ॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्ति पाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ ॐ तत् सत् ॥

॥ इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ त्रिपादविभूतिमहानारायण उपनिषद समाप्त॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥